प्रकाशन नं. 103

जीवन यात्रा तथा सिद्धांत

श्री गुरु नानक देव जी
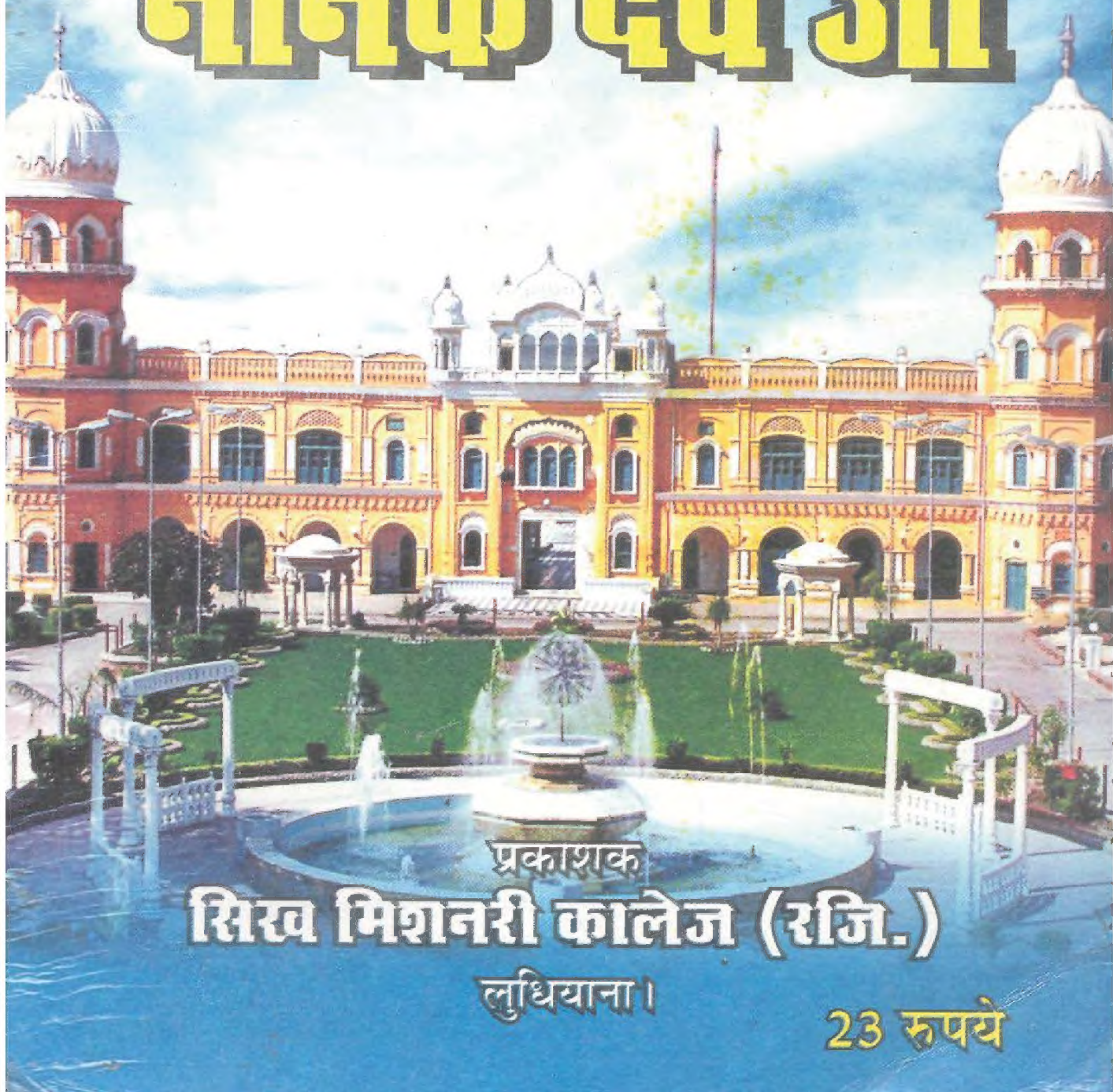
प्रकाशक
सिख मिशनरी कालेज (रजि.)
लुधियाना।

23 रुपये

प्रकाशन नं.
103

जीवन यात्रा तथा सिद्धान्त
श्री गुरु नानक देव जी

लेखक : स॰ कृपाल सिंघ 'चंदन'
अनुवादक : स॰ कुलबीर सिंघ, नई दिल्ली

प्रकाशक
सिख मिशनरी कालेज (रजि:)
लुधियाना।

जीवन यात्रा तथा सिद्धान्त

श्री गुरू नानक देव जी

प्रकाशक : सिख मिशनरी कालेज (रजि:) लुधियाना।
मुद्रक : ब्राईट प्रिंटर्ज, जालन्धर।

मिलने के पते :

सिख मिशनरी कालेज (रजि:)

1051/14, फील्ड गंज, लुधियाना–141 074 फोन : 0161-5021815
Website : www.sikhmissionarycollege.org
www.smcludhiana.com
E-mail : query@smcludhiana.com

दिल्ली सब-आफिस :

सी–135, मानसरोवर गार्डन, नई दिल्ली–110015 फोन : 011-65330502
एवं सिख मिशनरी कालेज (रजि:) के सभी सर्कलों में उपलब्ध।

੧ੳ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਜੀ ਕੀ ਫ਼ਤਹਿ ॥

विषय सूची

यह प्रयास क्यों?

सिख धर्म और सिख इतिहास के विषय पर पंजाबी भाषा में बहुत-सा प्राधिकृत साहित्य मिल जाता है, परंतु हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं में प्राधिकृत सिख साहित्य बहुत कम मिलता है। पंजाब से बाहर के प्रदेशों में, शिक्षण संस्थाओं में पंजाबी भाषा की पढ़ाई का प्रबन्ध न होने के कारण नई पीढ़ी सिख धर्म, इसके सिद्धान्तों व इतिहास से अनभिज्ञ ही रह जाती है।

इस प्रकार के अनेकों गुरसिख परिवार हैं जिनको अपने धर्म से तो बहुत लगाव है, परन्तु वे पंजाबी भाषा का ज्ञान न होने के कारण अपने धर्म और इतिहास की जानकारी प्राप्त करने में असमर्थ रहते हैं। हिन्दी प्रदेशों के गुरमत प्रेमियों व पंजाबी भाषा का ज्ञान न रखने वाले गुरमत ज्ञान जिज्ञासुओं की आवश्यकता व मांग को ध्यान में रखते हुए "सिख मिशनरी कालेज" द्वारा प्रथम चरण में, सिख साहित्य को हिन्दुस्तान की बहुसंख्या द्वारा बोली व पढ़ी जाने वाली हिन्दी भाषा में छपवाने का कार्यक्रम बनाया गया है।

इसमें कोई दो राय वाली बात नहीं कि प्रत्येक गुरसिख को गुरमुखी (पंजाबी) भाषा का ज्ञान होना चाहिए। परन्तु बहुत से ऐसे गुरसिख हैं जो साधनों की कमी के कारण अभी तक पंजाबी नहीं सीख पाये हैं या सीख पाने में असमर्थ हैं। ऐसे गुरसिख, सिख धर्म की मौलिक शिक्षाओं से वंचित न रह जायं, आस-पास के पराधर्मी वातावरण में विचरण करते हुए हीन भावना से ग्रसित न हों, अपने धर्म के प्रति गौरव महसूस करें, कर्तव्यपरायण हों; दूसरे गुरु नानक साहिब का सर्वव्यापी संदेश पराधर्मियों तक भी पहुँचे, इन बातों को दृष्टि में रखते हुए, जीवन यात्रा तथा सिद्धांत गुरू नानक देव जी का प्रकाशन पंजाबी भाषा के अतिरिक्त हिंदी भाषा में भी किया गया है। हमारे पाठकों को यह जानकर हर्ष होगा कि शीघ्र ही कालेज के अन्य प्रकाशनों के हिंदी संस्करण उनके हाथों में पहुंच रहे हैं।

आमुख

गुरू नानक देव जो सिख धर्म के जन्मदाता थे। उन्होंने जो आदर्श जोवन-फलसफा मानवता को दिया उसे आज हम 'सिख धर्म' के नाम से जानते हैं। यह धर्म सबसे अधिक बल, एक अकालपुरख को भक्ति (नाम सुमिरन) पर देता है और मनुष्य को निरर्थक विश्वासों तथा कर्म-काण्डों को त्यागकर, ऊचे व निर्मल धार्मिक तथा सदाचारक गुण धारण करके, आचरण को पाक-पवित्र रखने की प्रेरणा देता है। इसका कार्य क्षेत्र केवल पाठ-पूजा तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसका मनोरथ तो मनुष्य को उसके सभी जीवन-क्षेत्रों—धार्मिक, सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक आदि में ठीक मार्गदर्शन करना है। अपने इस मौलिक तथा स्वतंत्र धर्म को प्रचारित करने के लिये गुरु नानक साहिब को उस समय के प्रचलित धर्मों का विरोध भी सहन करना पड़ा, क्योंकि गुरु जी ने उनके ग़लत विश्वासों तथा ग़लत कामों का बड़े साहस तथा निर्भयता से खण्डन किया था।

गुरु साहिब ने संसार को केवल एक नवीन विचारधारा ही नहीं दी, बल्कि इस विचारधारा के प्रचार तथा प्रसार का प्रबध भी किया। उन्होंने अपनी विचारधारा को प्रचारित व प्रसारित करने का भी प्रबंध किया। वे अपनो विचारधारा को प्रचारित करने हेतु आयु-पर्यंत यत्नशील रहे। उन्होंने सारे हिन्दुस्तान, इसके साथ लगते क्षेत्रों में व अरब तक जाकर गुरमत का प्रचार किया। इसी विचारधारा को जीवित रखने तथा इसके बढ़ने-फूलने के लिये उन्होंने 'संगत' की स्थापना की व प्रचारकों की नियुक्ति की। इसीलिए ही गुरगद्दी प्रथा को जारी किया। उनके बाद नो गुरु साहिबान भी इसी मत का प्रचार व प्रसार करते रहे। दसम पातशाह के समय 'संगत' को ही 'सिख पंथ' का रूप दिया गया और दशमेश जी ने सिख पंथ को आदेश दिया कि वे उनके पश्चात् 'गुरु नानक विचारधारा' पर पहरा दें। सिखों ने

इस कर्तव्य को बड़ी खूबी से निभाया—चाहे इस कार्य की ख़ातिर अनेकों कुर्बानियां भी देनी पड़ीं। कुछ समय से चाहे सिखों ने अपना यह दायित्व भुला दिया है, परंतु फिर भी इस समय कुछ सरगर्म धर्म-प्रचारक संस्थाओं का मैदान में आना, इस बात का प्रमाण है कि सिखों में धर्म के प्रचार तथा प्रसार का अहसास पुनः जागृत किया जा रहा है। पर आज सिख धर्म का प्रचार करने के समय एक बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। वह है सिख विचारधारा तथा सिख इतिहास के बारे में पंथ द्वारा स्वीकृत पुस्तकों की कमी। सिख विचारधारा के भिन्न-भिन्न विद्वानों की भिन्न-भिन्न राय है। इन विद्वानों ने गुरमत विचारधारा को स्पष्ट करके पेश करने के स्थान पर गुरमत-सिद्धांतों को धुंधला सा बना दिया है। गुरमत को एक स्वतंत्र धर्म के रूप में पेश करने के स्थान पर इसे दूसरे धर्मों—वेदांत तथा इसलाम आदि के झरोखे में से देखकर गुरमत सिद्धांतों की व्याख्या भिन्न-भिन्न ढंग से की जा रही है। इसका कारण लेखकों में गुरबाणी के अर्थों की सही सूझ की कमी है। अर्थ करने वाले भी वेदांत ब्राह्मणी, इसलामी तथा कम्युनिस्ट विचारों के प्रभाव में मनमाने अर्थ करते जाते हैं। इस प्रकार कुछक साधुओं, उदासियों (निर्मलों) तथा प्रोफेसरों ने कई तरह की 'गुरमत' पेश कर दी है।

यही दशा सिख इतिहास की है। हम अपने 500 साल पुराने इतिहास को संभालने में भी असमर्थ रहे हैं। लेखकों में ऐतिहासिक तथ्यों के बारे में बहुत मतभेद पाये जाते हैं। गुरू नानक साहिब की जन्मतिथि से लेकर दसम पातशाह के ज्योति में बिलीन होने के बारे तक, लेखकों की भिन्न-भिन्न रॉय है। पुराने लिखारियों ने इतिहास को पौराणिक रंग देकर मिथ्यहास सा बना दिया है। गुरु साहिबान के व्यक्तित्व को उभारने के स्थान पर उन्हें ब्राह्मणी देवताओं की शक्ल में पेश किया गया है। इस प्रकार गुरु साहिबान का वह व्यक्तित्व जो पुराने इतिहास में से प्रकट होता है, और जो गुरबाणी में से प्रकट होता है—उसमें बहुत अंतर है। मुसलमान लिखारियों ने जान-बूझकर, ईर्ष्यावश, सिख इतिहास को बिगाड़ कर लिखा है। विदेशी इतिहासकारों ने हमारे पुराने ग्रंथों तथा मुसलमान इतिहासकारों की लिखाई के आधार पर ही सिख इतिहास को कलमबंद किया है।

गुरु नानक साहिब के जीवन पर विचार करते समय भी प्रमाणिक इतिहास की कमी महसूस होती है। जन्म-साखियों, सूरज प्रकाश, महिमा प्रकाश आदि प्राचीन ग्रंथों में गुरु जी के जीवन को बहुत अधिक पौराणिक रंग दिया गया है, गुरु साहिब को एक ऐतिहासिक जन-नेता प्रकट करने के स्थान पर, एक पौराणिक देवता के रूप में या इसलामिक पीर के रूप में पेश किया गया है। कई जन्म-साखियां (मिहरबान वाली जन्म साखी, तथा भाई बाले वाली जन्म-साखी आदि) तो गुरू घर के विरोधियों की ओर से लिखी या लिखवाई गई थीं, जिनमें गुरु जी के व्यक्तित्व को जान बूझकर गलत रंग में पेश किया गया है। भाई बाले वाली जन्मसाखी में से इस प्रकार की कुछ साखियों को सिखों के रोश से डर कर, प्रकाशकों ने निकाल दिया है।) गुरु साहिब के जीवन तथा फलसफे के बारे में जो साहित्य अभी तक छपा है, उसमें विरोधाभास बहुत है। अभी तक सारे सिख गुरु पातशाह की जन्म-तिथि के बारे में एकमत नहीं हो सके। उन्होंने धर्म हेतु कुल कितने प्रचारक दौरे (उदासियां) लगाये और कौन से जगत दौरे में कौन-कौन से क्षेत्र में गये—इसके बारे में भी मतभेद हैं। उनके ज्योति में विलीन होने के बारे में भी कई विद्वानों की राय है कि उनका देहांत साधारण व्यक्तियों की भांति ही हुआ था ; परंतु कई पुरातन-पंथी कह रहे हैं कि गुरु जी स-शरीर ही अकालपुरख के देश को चले गये थे।

ऐतिहासिक घटनाओं की बात तो छोड़ो, गुरु साहिब के व्यक्तित्व तथा विचारधारा के संबंध में 'विद्वानों' ने सख्त मतभेद खड़े किये हुए हैं। कुछ विद्वान तो गुरु जी को इसलाम की विचारधारा से प्रभावित हुआ बताते हैं, कुछ वेदांत से तथा कई उन्हें सूफी संतों से प्रभावित हुआ बताते हैं, कई उन्हें भक्ति आंदोलन से प्रभावित, एक भगत ही मानते हैं।

चाहे सतगुरू साहिबान ने अपनी बाणी में स्पष्ट किया है कि उनका गुरू तो केवल एक अकालपुरख है, तो भी सिख तथा ग़ैर-सिख नाम मात्र के विद्वानों ने गुरु साहिब के कई और 'गुरुओं' की 'खोज' निकाल मारी है। संत रेण, वरुण देवता, भक्त कबीर जी, बग़दाद वासी मुरीद आदि को, भिन्न-भिन्न विद्वान गुरु साहिब का 'गुरु' बताते रहे हैं।

इतना ही नहीं गुरु जी के नाम पर कई ऐसी रचनाएं भी प्रचलित रही हैं जिनकी रचना स्वयं गुरू जी ने नहीं की थी और जो श्री गुरु ग्रंथ साहिब में भी शामिल नहीं हैं। इनमें से कुछ-एक रचनाएं इस प्रकार हैं : रतनमाला, नसीहतनामा, पैंतीस अखरी, प्राणसंगली तथा 'जित दर लख मुहेमंदा' वाला शब्द आदि।

प्राचीन तथा वर्तमान समय के कुछ तथाकथित विचारवान गुरु जी को केवल सुधारक ही मानते हैं ; जिससे उनकी मुराद है कि गुरु साहिब ने पहले से प्रचलित हिंदू विश्वासों में तथा हिंदू समाज में ही सुधार किया है, और उन्होंने संसार को कोई नवीन मत (धर्म) नहीं दिया। कुछ कहते हैं कि गुरुजी सख्त व गर्म विचारोंवाले सुधारक थे ; क्रांतिकारी नहीं थे। परंतु प्रिंसीपल सतबीर सिंघ के शब्दों में हमें यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि—"गुनगुने पानी से कभी गाड़ियां नहीं चलतीं'। गाड़ियां तो भाप (Steam) से ही चलती हैं। नवीन विचार केवल कोई क्रांतिकारी ही दे सकता है, बीच का रास्ता अपनाने वाला सुधारक नहीं।''

भाई काहन सिंघ 'नाभा', सरदार खज़ान सिंघ, मैकालिफ़, भाई वीर सिंघ, तथा आज के कई भारतीय तथा पश्चिमी विद्वान गुरु नानक पातशाह को क्रांतिकारी मानते हैं। उनके विचार में गुरु जी जिस (हिंदू) समाज में पैदा हुए उसके धार्मिक विश्वासों को त्याग कर, उन्होंने नये समाज की नींव रखी। ब्राह्मणी धर्म के प्रारंभिक सिद्धांतों पर गुरु जी ने करड़ी चोट की। यह विचार ही वास्तव में सही विचार है। हम गुरू जी की बाणी, उनके (तथा उनके उत्तरा-धिकारी सिख गुरुओं के) जीवन इतिहास को जैसे-जैसे पढ़ेंगे, वैसे-वैसे हमारे विचार भी ऐसे ही बनते जायंगे कि गुरू जी ने अपनी भिन्न विचारधारा (सिख धर्म) संसार को दी और एक नयी कौम की नींव रखी।

गुरू नानक साहिब के ऐतिहासिक महत्व को समझने के लिये यह बहुत ' वश्यक है कि देश की तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक दशा पर दृष्टिपात किया जाय। इसलिए गुरू जी का जीवन आरंभ करने से पूर्व अगले पृष्ठों पर उस समय के इन हालातों पर विचार की गई है।

2

गुरू नानक-आगमन समय की धार्मिक दशा

जिस समय गुरु नानक साहिब का प्रकाश हुआ, उस समय भारत में धर्मों व तथाकथित धर्मात्मा लोगों की बहुतायात थी। तीन प्रकार के धार्मिक नेता बहुत प्रसिद्ध थे—ब्राहमण, काज़ी तथा योगी। इनके जीवन की अच्छी तरह पड़ताल करने के पश्चात्, गुरू नानक पातशाह ने कहा कि ये लोग जो अपने आपको धर्म के ठेकेदार समझते हैं, वास्तव में इनका धर्म से कोई सरोकार नहीं है, बलिक ये अपने स्वार्थ की खातिर धार्मिक पाखण्ड धारण किए हुए हैं। थोड़े से शब्दों में ही गुरदेव ने इन धार्मिक नेताओं के बारे में अपना निर्णय दिया। यथा :

> कादी कूड़ बोलि मलु खाइ। ब्राहमणु नावै जीआ घाइ।
> जोगी जुगति न जाणै अंधु। तीने ओजाड़े का बंधु।
> (धनासरी महला १, पृ. 662)

> सरम धरम दुइ छपि खलोए, कूड़ फिरै परधानु वे लालो।
> काजीआ बामणा की गल थकी, अगदु पड़ै सैतानु वे लालो।
> (तिलंग महला १, पृ. 722)

> —सरम धरम का डेरा दूरि। नानक कूड़ु रहिआ भरपूरि।
> (वार आसा, महला १, पृ. 471)

ब्राहमण :—पंडितों के बारे में गुरु साहिब ने कहा कि वे धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन तो अवश्य करते हैं; परन्तु उनमें क्या लिखा हुआ है, उसके बारे में नहीं सोचते। लोगों से पैसे ठगने के लिए ही वे धार्मिक पुस्तकों का पठन-पाठन करते हैं। यथा :

> पंडित वाचहि पोथीआ, ना बूझहि वीचारु।
> अन कउ मती दे चलहि, माइआ का वापारु।
> (सिरी राग महला १, पृ. 56)

पण्डित सुबह शाम पुस्तकों का पाठ करते थे, गायत्री का गायन करते थे। गले में माला, दो धोतियां, माथे पर तिलक धारण करके धर्मात्मा होने का दिखावा कर रहे थे। सतिगुर साहिबान ने पण्डितों की इन बातों को फोकट-कर्म ही कहा जिनका प्रभ प्राप्ति से कोई संबंध नहीं था। यथा ;

पड़ि पुस्तक संधिआ बादं। सिल पूजसि बगुल समाधं ॥
मुखि झूठ विभूखण सारं। त्रैपाल तिहाल बिचारं।
गलि माला तिलकु लिलाटं। दुइ धोती बसत्र कपाटं ॥
जे जाणसि ब्रहमं करमं। सभि फोकट निसचउ करमं ॥

(वार आसा महला १, पृ. 470)

ऐसे पण्डितों तथा वेद-पुराणों की शिक्षाओं के प्रभाव के कारण लोग एकीश्वर का पल्ला छोड़कर असंख्य देवी-देवताओं की पूजा में उलझ गए थे। प्राकृतिक शक्तियों के भेदों को न समझ सकने के कारण लोगों ने उन्हें देवी-देवताओं का रूप देकर पूजा करनी आरंभ कर दी थी। सूर्य, वरुण (पानी), हवा, अंधेरी, इंद्र (बादल), अग्नि, आदि ही देवता थे। नदियों, पहाड़ों तथा आकाशीय बिजली की पूजा की जाती थी। ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी तीन बड़े देवता माने गए थे, जिनका काम संसार की उत्पत्ति करना, पालन करना तथा संहार (मारना) करना माना जाता था। प्रसिद्ध राजाओं—श्री रामचंद्र तथा श्री कृष्ण जी आदि की 'ईश्वर' करके पूजा की जाती थी। गाय, सांप (शेषनाग, कालोनाग, गुगा) सांड, मगरमच्छ आदि जानवरों तथा पीपल, तुलसी, नीम, कोकर, नारियल आदि पेड़ों की पूजा की जाती थी। स्वर्ग-नर्क, भूत-प्रेत आदि में विश्वास किया जाता था। जादू-मंत्र टोने, पित्तर-पूजा, शमशान या कब्रों की पूजा, शगन-अपशगुन का भ्रम, महूर्त निकालने, तीर्थ स्थान, व्रत आदि कई प्रकार के दान, (जैसे रुपया, पैसा, सोना चाँदी, हाथी-घोड़े, भूमि, सेज सहित स्त्री का दान आदि), अनेक प्रकार के यज्ञ, देवताओं के कोप से बचने के लिए मनुष्यों तथा पशुओं की बलि, मुक्ति प्राप्ति हेतु गया तथा बनारस आदि धार्मिक स्थानों पर पण्डितों को धन माल दान करने के बाद आत्म-हत्या करना ; तथा कई प्रकार के अनेकानेक अंध-विश्वास उस समय के धर्म के अभिन्न अंग बन चुके थे।

उस समय के हिन्दू समाज के बारे में लाला दौलत राय 'आर्य' अपनी पुस्तक 'स्वानि उमरी गुरु गोबिंद सिंघ' में लिखते हैं :

"एक (हिन्दू) गणेश का पुजारी था, दूसरा सूरज का, तीसरा शिव का चौथा विष्णु का, पाँचवाँ राम का, छटा कृष्ण का, सातवां हनुमान का, आठवां ब्रह्मा का, नौवाँ लक्ष्मण का, दसवाँ शंकर आचार्य का, ग्यारहवाँ वेदांती, बारहवां कर्मकाण्डी और उस पर आपस में विरोध और कीना। मुल्क की ज़ुबान एक न थी. धर्म पुस्तकें एक न थीं, जो तमाम हिन्दूओं पर हावी हों, धर्म का कोई ऐसा मसला न था जिसमें तमाम हिंदू शामिल हों।"

प्रसिद्ध हिंदू विद्वान डा० गोकल चंद नारंग अपनी पुस्तक ग्लोरियस हिस्टरी ऑफ सिखिज़्म' (Glorious History of Sikhism) के पृष्ठ13 पर लिखते हैं :

"श्री गुरु नानक देव जी के समय का प्रचलित ब्राह्मणी धर्म, विशेष ढंग से स्नान करना, विशेष प्रकार से माथे पर तिलक लगाने, विशेष प्रकार के खाने-पीने के ढंगों तथा अन्य बाहरी पाखण्डों-वेषों तक ही सीमित था। हर स्थान पर मूर्ति-पूजा प्रचलित थी। लोग गंगा तथा अन्य तथाकथित पवित्र तीर्थों की यात्रा करते थे। लोग ब्राह्मण के कथनानुसार कुछ विशेष रीतियां तथा संस्कार करते थे और उस समय पण्डितों को दान दिया जाता था। बस यही था हिन्दू धर्म।"

अज्ञानता में डूबे हुए हिन्दुओं के बारे में सतगुरु साहिबान ने स्वयं लिखा है :

"हिंदू मूले-भूले, अखुटी जांही।
नारदि कहिआ, सि पूज करांही।
अंधे गुंगे, अंध अंधार॥
पाथरु ले पूजहि, मुगध गवार॥
ओहि जा आपि डुबे, तुम कहा तारणहारु॥

(वार बिहागड़ा, सलोक महला १, पृ. 556)

भाई गुरदास जी ने इन लोगों की धार्मिक दशा का चित्रण इस प्रकार किया है।

भई गिलानि जगत विच, चार वरन आश्रम उपाऐ॥
दस नाम संनिआसीआं, जोगी बारहि पंथ चलाऐ॥
जंगम अते सरेवड़े, दगे दिगंबर वाद कराऐ॥

ब्राहमण बहु परकार कर, नाल छतीस पाखंड रलाऐ ॥
तंत मंत रसइिणा, करामात कालख लपटाऐ ॥
ऐकस ते बहु रूप कर, रूप करूपी घणे दिखाऐ ॥
कलिजुग अंदर भरम भुलाऐ ॥ (वार १, पौड़ी 19)

जोगी :—धर्म का दूसरा नेता था जोगी । जोगी गोरखनाथ की बताई राह पर चलने वालों को कहा जाता था । इनके अनुसार प्रभु प्राप्ति (जोम प्राप्त करने) हेतु मन को साधना (वश में करना) बहुत आवश्यक था जो कि उनके अनुसार इस संसार में रहकर वशीभूत नहीं हो सकता । इसकी खातिर जंगलों में रहना पड़ता था, कई प्रकार की योगिक क्रियाएं (आसन आदि) करनी पड़ती थी । परंतु घर गृहस्थी त्याग कर अन्न–वस्त्र आदि की पूर्ति हेतु ये लोग फिर सांसारिक लोगों के घर भीख मांगने जाते थे । जटा बढ़ानी, शरीर पर राख मलना, कानों में मुद्राएं डालना, हाथ में डंडा और शंख रखना आदि इन लोगों के धार्मिक पाखंड के अंग थे । गुरू नानक देव जी ने कहा कि इन रीतियों/विधियों के द्वारा प्रभु प्राप्ति नहीं हो सकती । यथा :

जोगी गिरही जटा बिभूत । आगै पाछै रोवहि पूत ॥
जोगु न पाइिआ, जुगति गवाई । कितु कारणि सिरि छाई पाई ॥
(वार रामकली महला १, पृ. 951)

जोगु न खिंथा, जोगु न डंडै, जोगु न भसम चड़ाईअै ।
जोगु न मुंदी, मूंडि मुडाइिअै, जोगु न सिंगी वाईअै ।
अंजन माहि निरंजन रहीअै, जोग जुगति इव पाईअै ॥
गली जोगु न होई ॥
ऐक दृसटि करि समसरि जाणै, जोगी कहीअै सोई ॥
(सूही महला १, पृ. 730)

जैनी :—जोगियों से मिलते-जुलते जैनी साधु होते हैं । इनका मुख्य धर्म अहिंसा (जीव हत्या न करना) होता था । ये अहिंसा के पुजारी स्नान करने से भी भय खाते थे, कि कहीं पानी के बीच में बसने वाले जीवों की 'हत्या' न हो जाए । ये लोग हर समय मुंह को कपड़े से ढांपे रखते थे, ताकि कोई जीव नीचे आकर मर न जाए । चलते समय एक ही पंक्ति में चलते थे । पहला साधु यह ध्यान रखता था कि रास्ते में कीड़ा आदि नीचे न आ जाय । इतना ही नहीं,

जंगल-पानी जाने के पश्चात् ये पाखाने को लकड़ी से फैला दिया करते थे ताकि उसमें कोई जीव उत्पन्न न हो जाये। जीव हिंसा के भय ने इनके जीवन को बहुत गंदा, घिनौना तथा कुचील बना दिया था। सतगुरु साहिबान ने इनके ऐसे कर्मों का विरोध किया और कहा कि ये स्वयं तो जगलों में बसते हैं, परंतु इनके बाल-बच्चे घर (भूख, गरीबी द्वारा) रोते चिल्लाते हैं, इन्हें सच्चे गुरू के ज्ञान की आवश्यकता है, जिसके बिना ये अपना जीवन व्यर्थ गंवा रहे हैं। गुरू जी ने इस दशा का बर्णन इस प्रकार किया है।

'सिरु खोहाइि पीअहि मलवाणी, जूठा मंगि मंगि खाही ।।
फोलि फदीहति मुहि लैनि भड़ासा, पाणी देखि सगाही ।।
भेडा वागी सिरु खोआइिनि, भरीअनि हथ सुआही ।।
माऊ पीऊ किरतु गवाइिनि, टबर रोवनि धाही ।।

....

....

सदा कुचील रहहि दिनु राती, मथै टिके नाही ।।
झुण्डी पाइि बहनि निति मरणै, दड़ि दीबाणि न जाही ।।

....

....

गुरु समुंदु, नदी सभि सिखी, नातै जितु वडिआई ।।
नानक जे सिर खुथै नावनि नाही, ता सत चटे सिरि छाई ।।
(सलोक महला १, माझ की वार, पृ. 149)

वाम मार्गी :—भारत के कुछ हिस्सों में उस समय एक और धर्म भी प्रचलित था, जिसे वाम मार्ग कहा जाता था। यह मत तंत्र शास्त्र की रीति के अनुसार शिव के उपासकों द्वारा चलाया हुआ था। इसमें मदिरा (शराब, मास, मैथुन (Sexual Intercourse) व मुदरा (भुने हुए चने, चिड़वे, तथा गेहूँ का बेरड़ा आदि) का प्रयोग करना आदि धर्म का आवश्यक अंग थे। इनकी धार्मिक शब्दावली भी अपनी ही थी, जैसे—मास को सुध, शराब को तीर्थ, शराब के प्याले को पदम, वेश्या-गामी को प्रयागसेवी तथा व्यभिचारी को योगी कहते थे। मुक्ति (निर्वाण) की प्राप्ति हेतु इन्होंने शराब, मास, मछली, मुदरा तथा मैथुन यही पाँच साधन माने हैं। जैसे कि तंत्र-शस्त्र के इस श्लोक में दर्ज है :

मदयं मासं तथा मत्स्यो, मुंद्रा मैथुनमेव च ।
पंच तत्व मिदं प्रोकंत, देवि निरवाण हेतवे ।

अपने मतावलवियो के सम्मिलनों को ये 'भैरवी चक्र' कहते थे। उनमें पूजा के समय सभी का वरण-भेद मिट जाता था। सभी एक ही बर्तन में मांस खाते तथा शराब पाते थे। यह भी माना जाता था कि 'भैरवी चक्र' में सभी रिश्ते समाप्त हो जाते हैं। बहिन-भाई, मां-पुत्र, बाप-पुत्री आदि के रिश्ते नहीं रहते। इस समय सभी के संग व्यभिचार करने की छूट होती है।

गुरु नानक देव जी इन लोगों के आश्रमों पर गये तथा इन्हें व्यभिचार तथा आचरण से गिरे हुए कार्य करने से रोका।

काज़ी :—जिस प्रकार से हिंदू समाज के नेता ब्राह्मण व जोगी थे, इसी प्रकार मुस्लिम समाज के धार्मिक नेता काज़ी हुआ करते थे। काज़ी हाकिम श्रेणी के साथ संबंध रखने के कारण मुसलमान राजाओं के सलाहकार हुआ करते थे। आम लोगों में अपने धर्म का प्रचार करने के स्थान पर ये राजाओं की खुशी प्राप्त करने में ही समय गंवा देते थे। हिंदुओं पर अत्याचार करने के लिए मुसलमान राजा लोग काजियों से मन पसंद फतवे (दन्ड लगवाना) ले लेते थे। दूसरी ओर ये काज़ी ही थे जो मुसलमान राजाओं को (जो कि अत्याचारी होते थे, हिन्दू जनता पर अत्याचार करते थे) मुसलमानों में एक अच्छ व पक्के मुसलमान के तौर पर पेश करते थे। न्याय का कार्य भी काजियों के पास होता था। न्याय करने के स्थान पर ये लोग रिश्वत लेकर बे-गुनाह लोगों को कसूरवार करार कर देते थे। यथा ;

काज़ी होइ कै बहै निआइ। फेरे तसबी करे खुदाइ ॥
वढी लै कै हक गवाए। जे को पुछै ता पड़ि सुणाइ ॥

(वार रामकली, सलोक महला १, पृ 951)

चाहे क़ुरान में मनुष्य की समानता पर काफी बल दिया गया है, परंतु काज़ियों के प्रचार के फलस्वरूप मुसलमान जनता ही कई संप्रदायों में बटी हुई थी। चार मुख्य संप्रदाय थे—शीया, सुन्नी, राफजी, इमामसाफी। यह संप्रदाय आपस में ही लड़ते रहते थे। शीया तथा सुन्नी तो आज तक भी एक-दूसरे की जान के वैरी बने हुऐ हैं।

ऐसे काज़ियों की शिक्षा के फलस्वरूप मुसलमान जनता, क्षमा, धैर्य, संतोष, मानव प्यार, प्रभु प्यार, जनमानस की सेवा आदि धार्मिक सदाचारक गुणों को त्यागकर केवल बाहरी स्वरूप ही मुसलमानों वाला बनाये बैठी थी। मक्का की यात्रा, रोज़े रखने, दिखावे के तौर पर पाँच निमाजें अदा करनी; बाहरी स्वरूप (पाखण्ड) मुसलमानों वाला बनाये रखना—इन रीति-रसमों को ही मुसलमानों ने धर्म समझ रखा था। काफ़िरों (गैर मुसलमानों) को अपने धर्म में लाने का 'नेक कार्य' करने को सभी मुसलमान तत्पर रहते थे क्योंकि उनमें इस बात को प्रचारित किया गया था कि ऐसा करने से खुदा प्रसन्न होता है और इस कार्य में यदि जान भी चली जाये तो मनुष्य बहिश्त (स्वर्ग) मे जाता है। इस शिक्षा के कारण मुसलमानों तथा गैर-मुसलमानों में झगड़े होते रहते थे।

ब्राहमणों तथा काज़ियों को शिक्षा के प्रभाव के अधीन मुसलमानों की धार्मिक दशा का वर्णन करते हुऐ भाई गुरदास जी कहते हैं :

> चारि वरन, चारि मजहबां, जग विच हिंदू मुसलमाणे ॥
> खुदी बखीली तकब्बरी, खिचोतान करेनि धिगाणे ॥
> गंग बनारसि हिंदूआं, मक्का काअबा मुसलमाणे ॥
> सुंनति मुसलमान दी, तिलक जंञू हिंदू लोभाणे ॥
> रामु रहीमु कहाइंदे, इक नाम दुइि राह भुलाणे ॥
> सेचु किनारे रहि गिआ, खहि मरदे ब्राहमण मउलाणे ॥
> सिरो न मिटे आवण जाणे ॥ (वम १, पौड़ी 21)

अतः सारांश स्वरूप हम यह कह सकते हैं कि जब श्री गुरु नानक देव जी का प्रकाश हुआ, उस समय भारत में हिंदू तथा इस्लाम दो धर्म मुख्य रूप से, तथा अन्य मत-मतांतर प्रचलित थे। भारत के प्रत्येक कोने में हज़ारों साधु, योगी, तपीशर आदि देखे जा सकते थे परंतु ये लोग स्वयं अज्ञान के अंधकार में भटक रहे थे। इन्हें न तो अकालपुरख का हो ज्ञान था, और न ही ये लोग किसी निर्मल व सुयोग्य जोवन पद्धति को धारण किये हुऐ थे। बल्कि ये तो कुछ पाखण्डों, रस्मों तथा रीतियों को ही धर्म समझ रहे थे। इनके पोछे लगे हुऐ लोग अपना जीवन व्यर्थ गंवा रहे थे; या आपस में ही लड़-लड़ कर खराब हो रहे थे।

गुरु नानक आगमन के समय की सामाजिक दशा

3

जब गुरु नानक देव जी का प्रकाश हुआ, उस समय भारत में दो बड़ी कौमे थीं—हिंदू तथा मुसलमान। इन दोनों धर्मों के धार्मिक सिद्धांतों, नियमों तथा रीति-रिवाजों में बहुत अंतर था। इन कौमों के लोग आपस में ही लड़ते-झगड़ते रहते थे।

हिंदू समाज चार वरणों—ब्राहमण, क्षत्रीय वंश्य तथा शूद्र में बटा पड़ा था। ब्राहमणों ने बाकी के तीन वरणों के लोगों पर अपनी सर्वोच्चता की धाक जमाई हुई थी। उसका कार्य धार्मिक पुस्तकों को पढ़ना तथा लोगों में धर्म का प्रचार करना था। क्षत्रियों का कार्य जंग-युद्धों में लड़ना हुआ करता था तथा विदेशी आक्रमणकारियों के अत्याचारों से देशवासियों को बचाने की जिम्मेवारी उनकी हुआ करती थी। इस कार्य के लिए युद्ध भूमि में शहीद हो जाना उसका परम-धर्म समझा जाता था। वश्यों का काम खेती-बाड़ी तथा व्यापार करना था। शूद्रों का काम बाकी के तीन वरणों के लोगों की निःस्वार्थ सेवा करना था। सब के सेवक होने के बावजूद भी शूद्रों की हालत बहुत दयनीय थी। उन्हें सब से नीच व्यक्ति समझा जाता था। ऐसे हालात पैदा कर दिये गये थे कि शूद्र सदा कंगाल रहें। ब्राहमण की शिक्षा के प्रभाव के कारण सब लोग शूद्रों से दूर रहते थे; उन्हें अछूत-अछूत कहकर दुत्कारा जाता था। लोग शूद्रों की परछाईं से भी दूर रहते थे; इन्हें गांवों तथा शहरों में बसने की आज्ञा नहीं थी बल्कि इनका वास गांवों, शहरों व कस्बों से दूर ही हुआ करता था। शूद्रों को प्रभु भक्ति का कोई अधिकार नहीं था।

हिंदू समाज का यह वरण-भेद ही था जिसमें वेदों शास्त्रों आदि धर्म ग्रंथों की शिक्षाओं के अनुसार ब्राहमण को सर्वोच्च और शूद्र को नीच, आदि माना जाता था। इन धार्मिक पुस्तकों में से कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:

(क) वरण भेद के बारे में: जब उन्होंने पुरुष का विभाजन किया, तो उसके जितने भाग उन्होने किये, उन्होने उसके मुंह, भुजाओं को क्या कहा? उन्होंने उसके हाथों पैरों को क्या कहा? ब्राहमण उसका मुंह था, और उसकी दोनों भुजाओं से क्षत्रीय बने। उसकी रानों (पटों) से वैश्य बने तथा पैरों से शूद्र पैदा हुए।

(ऋग वेद, X –90, 11,12)

ब्राह्मणों की सर्वोच्चता :

(1) मूर्ख हो, चाहे पढ़ा-लिखा हो, ब्राह्मण बड़ा देवता है।
(मनु समृति अ: 9 स: 347)

(2) ब्राह्मण यदि वेद के विरुद्ध कर्म कर ले तो भी वह दोशी नहीं होता। ब्राह्मण में सभी दोश दग्ध करने की शक्ति होती है जैसे अग्नि सभी वस्तुओं को राख बना देती है और जैसे स्त्री पराये मद के संग भोग करने के पश्चात् भी कलंक रहित रहती है।
(बृहत पाराशर संहिता, अ. 3)

(3) बदचलन तथा ऊचे आचरण वाला ब्राह्मण भी आदरणीय तथा पूजायोग्य है। यदि शूद्र बड़े ऊचे आचरण वाला या सदाचारी भी हो, तो भी उसे आदर देना उचित नहीं।
(पाराशर संहिता, अ. 6)

(4) यदि ब्राह्मण चोरी के अपराध में भी रंगे हाथों पकड़ा जाये, तो भी उसे चोरी की सजा नहीं देनी चाहिए क्योंकि राजा की बेवकूफी के कारण ही ब्राह्मण भूख से बचने के लिए चोरी करने को मजबूर होता है। (मनु सि., अ: 77, स-22)

(5) जो कुछ भी दुनियां में है, वह ब्राह्मण की संपत्ति है। ब्राह्मण (सबका मालिक होने के कारण) अपना ही भोजन खाता है, अपने कपड़े पहनता है और बलि आदि में अपनी ही सामिग्री भेंट चढ़ाता है। (मनु सि: अ: १, स. ९8-101)

(ग) शूद्रों की दुर्दशा :

(1) शूद्र को अकल न दो, होम (हवन) से बचा हुआ अनाज न दो और न ही उसे धर्म की शिक्षा दो। (मनु सि., अ: 4, स. 8)

(2) शूद्र यदि धन जमा करने योग्य भी हो जाये, तो भी उसे धन जमा नहीं करने दिया जाये, क्योंकि धनवान होकर शूद्र उच्च जातियों के हाथ से निकल जाता है और ब्राह्मणों को दु:ख दे सकता है। (मनु सि: अ. 8, स. 79)

(3) यदि शूद्र कपिल गाय का दूध पीये या वेद के अक्षर पढ़ ले तो सीधा नर्क को जायेगा। (पाराशर संहिता, अ. 2)

(4) पैरों से पैदा होने के कारण कोई शूद्र, ब्राह्मण, क्षत्रीय या वैश्य आदि उच्च जातियों को कठोर वचन कहे, तो राजा कम से

कम इतना अवश्य करे कि उस शूद्र की ज़ुबान काट दे।

(मनु. सि., अ. 4, स. 80)

यह ब्राह्मणी धर्म पुस्तकों का ही प्रभाव है कि आज मनुष्य चाहे बहुत पढ़-लिख गया है, परंतु लोगों के मनों में से 'नीच जातियों' के प्रति विचार नहीं बदले हैं। गुरु नानक पातशाह ने ब्राह्मण की वरण-भद नीति के विरूद्ध आवाहन किया और नीच कहे जाने वाले लोगों का पक्ष लिया। आपने कहा :

नीचा अंदरि नीच जाति, नीची ह अति नीचु।
नानकु तिन कै संगि साथि, वडिआ सिउ किआ रीस।
जिथै नीच समालीअनि, तिथै नदरि तेरी बखसीस॥

(सिरी राग महला १, पृ. 15)

ब्राह्मणों तथा शूद्रों के प्रति इस नीचतापूर्ण व्यवहार के कारण ही नाई, छींबे, जुलाहे, मोची, कुम्हार, बढ़ई, मरासी आदि जातियों के लोग इसलाम धर्म को ग्रहण करते जा रहे थे।

सदियों की ग़ुलामी ने लोगों को कायर तथा बुज़दिल बना दिया था। अपने आप को क्षत्रीय कहलाने वाले (जिनके जिम्मे लोगों के जान, माल, इज्जत का रक्षा आदि करने का डयूटी थी) लोगों में से वीरता खत्म हो चुकी थी। मुग़लों की चाकरी करना, उनकी चाटुकारिता करना, उनके प्रत्येक जायज़-नाजायज़ आदेश की पालना करना तथा उन्हे (मुग़लों) को खुश करने के लिए अपनी लड़कियों का डोलियां मुसलमानों को देना, इन वीर बहादुरों का स्वभाव बन चुका था। गुरु जी ने तभी तो कहा था :

खत्रीआ त धरमु छोडिआ, मलेछ भाखिआ गही॥
सृसटि सभ इक वरन होई, धरम की गति रही॥

(धनासरी महला १ पृ. 663)

क्षत्रियों की दशा तो यहां तक बिगड़ चुकी थी कि वे अपने घरों में तो धर्म-कर्म कर लेते थे, परतु मुग़लों के पास जाकर उनकी धर्म पुस्तकों की स्तुति करते थे। एक ओर वे गाय को पवित्र (माता) समझते थे, दूसरी ओर मुग़लों की अधीनता के कारण ब्राह्मणों तथा गायों पर टैक्स लगाते थे। उनकी दशा के बारे में गुरु साहिब ने व्यंग्य करते हुए कहा है :

"गउ बिराह्मण कउ करु लावहु, गोबरि तरणु न जाई ॥
धोती टिका तै जपमाली, धानु मलेछ खाई ॥
अंतरि पूजा पड़हि कतेबा, संजमु तुरका भाई ॥
(वार आसा, सलोक महला १, पृ. 471)

विदेशी हाकिमों के भय के कारण यहां के मूल निवासियों ने खाने पीने का ढंग, वस्त्र व बोलो भो हाकिमों वालो अपना ली थी। सतगुरू साहिबान कहते हैं :

(1) खाने पोने के बारे में :

अभाखिआ का कुठा बकरा खाणा ॥
चउके उपरि किसै न जाणा ॥ (वार आसा, पृ. 472)

(2) वस्त्रों के बारे में :

"नील वस्त्र पहिरि होवहि परवाणु ॥
मलेछ धानु ले, पूजहि पुराणु ॥ (वार आसा, पृ. 472)

और

'नील बसत्र ले कपड़े पहिरे
तुरक पठानी अमलु कीआ। (वार आसा, पृ. 470)

(3) बोली के बारे में :

आदि पुरख कउ अलहु कहीऐ, सेखां आई वारी ॥
देवल देवतिआ करु लागा, ऐसी कीरति चाली।
कूजा बांग, निवाज, मुसला, नील रूप बनवारी।
घरि घरि मीआं, सभनां जीआ, बोली अवर तुमारी।
(बसंत हिंडोल, महला १, पृ० 119)

अन्याय, भ्रष्टाचार व रिश्वतखोरी :

सरकार द्वारा काज़ियों को न्याय की कुर्सी पर बिठाया गया था, जो मुसलमानी शराह के अनुसार अपने निर्णय सुनाते थे। ये लोग इस प्रकार का पहरावा पहनते थे कि जिससे वे धर्मात्मा व ईमानदार नज़र आयें, परंतु आचरण के पक्ष से इनका भी दीवाला निकल चुका था—रिश्वत लेकर ये अपने निर्णय बदल दिया करते थे—दोशियों को रिहा कर देते थे और निर्दोश लोगों को सजा दे देते थे। शराह की पुस्तकें अरबी-फारसी में होने के कारण, वे अपने मन-भावन

अर्थ करके लोगों को बता देते थे। इन लोगों की दशा के बारे में गुरु साहिबान कहते हैं :

> काजी होइ कै बहै निआइ।
> फेरे तसबी करे खुदाहि।
> वढी लै कै हकु गवाए।
> जे को पुछै तां पड़ि सुणाऐ।

(वार रामकली, सलोक महला १, पृ. 951)

हाकिम श्रेणी में चाहे मुसलमान थे, चाहे हिन्दू (क्षत्रिय) सभी आम जनसाधारण जनता को लूट रहे थे और उन सभी ने धार्मिक पहरावा पहन रखा था, धर्मात्मा होने को नकाब पहन रखी थी। जहां मुसलमान हाकिम रिश्वत लेते थे, वहाँ वे निमाज पढ़ने तथा अन्य प्रकार की धार्मिक मर्यादा को निभाने में भी किसी प्रकार की ढील नहीं करते थे। दूसरी ओर हिन्दुओं में से जनेऊधारी क्षत्रीय भी लोगों का खून चूसने में लगे हुए थे। इनका शिकार अधिकांशत: हिन्दू जनता ही होती थी क्योंकि उसकी पुकार को सुनने वाला कोई नहीं था। मुसलमान जनता को पुकार सुनी ता जाती थी—हाकिम श्रेणी के मुसलमान इस बात का विशेष ध्यान रखते थे कि उनके धर्म-बंधु खुश रहें और उनका साथ देते रहें। उधर ब्राहमणों का यह हाल था कि वे गरीब हिंदू जनता का खून पीने वाले क्षत्रियों के घर जाकर सभी प्रकार के धर्म-कर्म करते थे, क्षत्रियों की पाप की कमाई की भेंट स्वीकार करते थे। इस सारी स्थिति का वर्णन गुरु साहिबान ने इस प्रकार किया है :

> माणस खाणे करहि निवाज।
> छुरी वगाइनि तिन गलि ताग।
> तिन घरि ब्रहमण पूरहि नाद।
> उना भि आवहि ओई साद।
> कूड़ी रासि कूड़ा वापारु।
> कूड़ बोलि करहि आहारु।

(आसा दी वार, पृ. 471)

गुरु जी कहते हैं कि लोगों का आचरण बहुत गिर गया है। अपने आप को धर्मात्मा कहलवाने वाले लोग, लुक-छिप कर विकार करके भी बाहरी पाखण्ड द्वारा यही जाहिर करते हैं कि वे धर्म की कमाई कर रहे हैं। अपने आप को धर्म गुरु कहलवाते वाले लोग, चेलों से माया बटोरने के लिए उन चेलों के घर शिक्षा देने जाते थे। सभी,

रुपये पैसे को ही प्यार करते थे। स्त्री का अपने पति के संग तब ही प्यार है यदि वह रूपया पैसा कमा कर लाये, नहीं तो पति चाहे घर आये या घर से चला जाये, स्त्री उसकी परवाह नहीं करती। यथा :

सती पापु करि सतु कमाहि।
गुर दीखिआ घरि देवण जाहि।
इसतरी पुरखै खटिऐ भाउ।
भावै आवउ भावै जाउ।

(रामकली की वार, सलोक महला १, पृ. 951)

समाज में स्त्री की दशा

समाज में स्त्री की दशा भी बहुत दयनीय थी। शूद्रों की भांति उसे भी जनेऊ धारण करने (हिन्दू धर्म अपनाने) का कोई अधिकार न था। उसका कार्य तो रसोई में रोटी पकाना, घर के अन्य छोटे मोटे कार्यों को करना या संतान की उत्पत्ति करने तक ही सीमित था। उसकी अपनी कोई मर्ज़ी या इच्छा नहीं थी। उसे सोचने का अधिकार नहीं था, उसका परम धर्म तो अपने "पति-परमात्मा" को खुश रखना ही था। वह अपने पति की खुशियों के बदले में अपना सब कुछ न्यौछावर कर देती थी, परंतु पति उसे एक पशु की भांति ही समझता था जिसे जब आवश्यकता हो कुछ पैसों के बदले में बेचा जा सकता था। पति के मरने के पश्चात उसे पुजारियों की काम-पिपासा को संतुष्ट करने के लिए, देव दासियों के रूप में बैठना पड़ता था। ब्राह्मणी धर्म पुस्तकों—पुराण, मनु समृत्ति, योगियों के प्रचार आदि के प्रभाव के अधीन स्त्री को मनुष्य के धार्मिक जीवन में रुकावट, अज्ञानी, सभी दुखों का मूल कारण, मूर्ख, कुमार्ग पर डालने वाला, नशीली शराब, वह जहर समझा जाता था। मनु जी महाराज लिखते हैं :

"स्त्रियां मूर्ख हैं, वेद मंत्रों से शून्य हैं तथा झूठ की मूर्ति हैं।"
(मनु समृति, अध्याय 5, सलोक 47-48)

पदम पुराण में स्त्री की बहुत दुर्गति की गयी है। उसमें लिखा है :

"पति चाहे बहुत ही बूढ़ा हो, कुरूप हो, लंगड़ा-लूला, कोहड़ी हो, डाकू, चोर, कातिल हो, शराबी हो, जूएबाज तथा रंडीबाज हो, सरे आम पाप करता हो, परंतु स्त्री को फिर भी उसकी ईश्वर की भांति पूजा करना चाहिए।"

योगियों, जैनियों, सिद्धों, तुलसी दास जैसे भक्तों के भी स्त्री के बारे में ऐसे ही विचार थे। मुसलमानों में भी स्त्री को मस्जिद में जा कर धर्म-कर्म करने तथा उपदेश करने का कोई अधिकार न था।

ऐसे समय में गुरु नानक पातशाह ने स्त्री के साथ हो रहे घोर अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाई और कहा कि जिस स्त्री ने धर्मी राजाओं, भक्तों, फिलासफरों, शूरवीरों आदि को जन्म दिया है, उसे बुरा नही कहना चाहिए। सच्चा धर्म लिंग-भेद को स्वीकार नहीं करता। वाहिगुरु की दृष्टि में तो वही मुख उज्जवल हैं जो प्रभु प्यार में रंगे हुए है (चाहे वे स्त्री है या पुरुष)। यथा :

"भंडि जंमीजै, भंडि निंमीजै, भंडि मंगणु वीआहु।
भंडहु होवै दोसती, भंडहु चलै राहु।
भंडु मुआ, भंडु भालीऐ भंडि होवै बंधानु।
सो किउ मंदा आखीऐ, जितु जंमहि राजान।
भंडहु ही भंडु उपजै, भंडै बाणु न कोइि।
नानक भंडै बाहरा, ऐको सचा सोइि।
जितु मुखि सदा सालाहीऐ, भागा रती चारि।
नानक, ते मुख ऊजले, तितु सचै दरबारि।

(वार आसा, महला १, पृ. 473)

अत : गुरु जी के आगमन के समय का भारतीय समाज कई प्रकार के मत-मतांतरों में बटा हुआ था। वरणों, जातियों में बटे हुए लोग आपस में ईर्ष्या तथा वैर-विरोध की भावना का शिकार थे। जहां मुसलमान (हाकिम होने के कारण) निर्दयी, अत्याचारी तथा बे-रहम बन चुके थे, वहां हिन्दू समाज निर्बल, डरपोक तथा स्वाभिमान से विरक्त हो चुका था। उस ने विदेशी हमलावरों की बोली, पहरावे, खाने पीने के तौर-तरीकों तथा विश्वासों को अपना लिया था। आम जनता सरकारी नौकर, क्षत्रियों तथा काज़ियों के अन्याय का शिकार बन रही थी। शूद्रों तथा स्त्रियों के साथ पशुओं से भी बुरा व्यवहार किया जा रहा था। रिश्वतखोरी हर ओर फैली हुई थी ; चांदी के कुछ सिक्कों द्वारा व्यक्ति का ईमान खरीदा जाता था। मानवीय समाज में धार्मिक तथा सदाचारक गुणों का सफाया हो चुका था।

4

गुरु नानक--आगमन के समय की राजसो दशा

आठवीं शताब्दी के आरंभ में ही मुसलमानों ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने आरम्भ कर दिए थे। पहला आक्रमण मुहम्मद-बिन-कासिम ने सन् 712 ई० में किया था तभी से इस देश के कष्ट व दुखड़े आरंभ हो गए। परदेसी आक्रमणकारी इस देश का धन दौलत कई बार छीन कर ले गये। विजेता आक्रमणकारी लालच, विषय वासनाओं तथा कामचेष्टाओं की पूर्ति हेतु इस देश के लाखों बच्चे-बच्चियों को गुलाम बनाकर ले गये। "काफिरों" (गर मुसलमानों) पर किए गये ये अत्याचार खुदा की खातिर किए गये जहाद या धर्म युद्ध कहे जाते थे। सैयद मुहम्मद लतीफ (हिस्टरी आफ दॉ पंजाब) के पृष्ठ 75-76 पर लिखते हैं :

> "तलवार स्वर्ग तथा नर्क की कुंजी है। मुसलमान के लिए खुदा की राह पर खून का एक कतरा बिखेरना, व युद्ध के मैदान में रात काटना—दो महीनों के रोजों तथा निमाजों से अधिक गुणकारी है। जो मुसलमान युद्ध क्षेत्र में मरता है, वह सीधा बहिश्त को जाता है। बहिश्तों में मोहित कर लेने वाली सुन्दर हूरें ऐसे शहीदों की बेसब्री से इन्तजार कर रही होती हैं। वहाँ बहादुर शहीद सदा के लिए आनंद और मौज का जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें किसी प्रकार की चिन्ता आदि नहीं होती, और सीमा से अधिक शारीरिक भोग-बिलास करने का उनके शरीर पर कोई दुश्प्रभाव नहीं पड़ता। उनके रहने के लिए सुन्दर महल होंगे, जो खुशियों भरे जीवन के हर प्रकार के सामान से भरपूर होंगे।

ऐसी धार्मिक शिक्षा ने मुसलमानों को बेहद अत्याचारी बना दिया था और उन्होंने जोश में अंधे होकर यहां के वासियों पर जो अत्याचार किए, वे इसलाम की सेवा में आहुति समझ गए। इसी कारण वी. ए. स्मिथ अपनी पुस्तक "इंडिया इन मुस्लिम पीरियड" के पृष्ठ 257 पर लिखता है, "उनके वहशियाना मजहबी जनून ने, जिसके अनुसार गैर मुसलमानों को मारना एक ऐसी सेवा थी जो खुदा को बहुत अच्छी लगती थी, इन्हें बिलकुल बेफिकर बना दिया।"

अरबी विजेताओं के पश्चात् अफगान लुटेरे आये। महमूद गजनवी के आक्रमणों ने देश में हा-हाकार तथा तबाही मचा दी। उसने 1001 से 1024 तक कई आक्रमण किए। उसके द्वारा की गई सोमनाथ के मंदिर की लूट तो इतिहास प्रसिद्ध है। उसके बाद और हमलावर भी आये। मंदिर गिराए गए, हिन्दुओं को मौत के घाट उतारा गया। जो स्त्री, पुरुष व बच्चे इस कत्लेआम से बच जाते थे, उन्हें देश से बाहर ले जाया जाता था और वहां पर टके-टके बेचा जाता था।

शनैः शनैः हमलावरों को यहां पर अपना स्थायी राज्य स्थापित करने का विचार आया। उन्होंने देश पर कब्जा करके यहां के लोगों को जबरदस्ती, धक्के द्वारा, जोर व तलवार के बल द्वारा दीन (इस्लाम) मनवाया तथा अपना राज्य कायम किया। ज्यों-ज्यों उनका राज्य पक्का होता गया, त्यों-त्यों अत्याचार और बढ़ने लगे।

200-300 साल इसी प्रकार बीत गए। बारी-बारी आधी दर्जन खानदानों ने दिल्ली के सुलतान बनने की कोशिश की। परंतु वे पक्के तौर पर सारे हिन्दुस्तान पर काबिज़ न हो सके। उनका राज्य दिल्ली के आस-पास के क्षेत्रों तक ही सीमित रहा। बाकी देश का हिस्सा स्वतंत्र नवाबों के अधीन होता था और वे जो जी में आता, करते थे हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार होते गए। उस समय के बारे में कुछ मुसलमान इतिहासकारों की राय इस प्रकार है :

(1) 'कामिलतवारीख' में 'इबन असीर' लिखता है कि गजनी के शाहबुदीन ने अजमेर के हजारों वासियों को मार दिया और बाकियों को गुलाम बनाने के लिए रख लिया। बनारस में भी असंख्य मर्दों, औरतों तथा बच्चों को पार लगाया गया।

(2) "ताजुल आसिर" में हसन निजामे नैशापुरी लिखता है कि कुतबदीन अबक (1194-1210) ने मेरठ मे हिन्दुओं के मंदिर गिराए और उनके स्थान पर मसीतों का निर्माण किया। कायल दे नामक शहर जिसे आजकल अलीगढ़ कहा जाता है, में हिन्दुओं को उसने तलवार के जोर से मुसलमान बनाया और जिन्होंने अपना धर्म छोड़ने से न की, उन्हें मारकर खत्म कर दिया। कालंजर में उसने 113 मंदिर गिरा कर उनके स्थान पर मसीतों का निर्माण करवाया, एक लाख हिंदुओं को तलवार की भेंट चढ़ाया तथा पचास हजार और लोगों को गुलाम बनाया।

(3) मिनहाचुल सिराज की पुस्तक 'तबकाति नासिरी' में लिखा हुआ है कि जब मुहम्मद बखतिआर खिलजी ने बिहार फतेह किया तो उसने एक लाख ब्राह्मणों को कत्ल किया और प्राचीन सांस्कृतिक पुस्तकों के बहुमूल्य पुस्तकालय को जला दिया।

(4) ताजीआतुल अमसार वा तजरीआतुल असार में अबदुल्ला वसफ ने लिखा है कि जब इलाउदीन खिलजी (1295-1316) ने कंबे खाड़ी के सामने की ओर बस रहे शहर कंबआत पर कब्जा किया तो उसने इसलाम की शान व बड़प्पन की खातिर वहां के सारे हिन्दू मर्दों को कत्ल कर दिया। लहू के दरिया बहा दिए, देश की औरतों को उनके गहनों, सोने चांदी तथा हीरे जवाहरातों सहित अपने देश में भेज दिया और तकरीबन 20,000 कुंवारी कन्याओं को अपनी दासियां बना लिया।"

"एक बार इलाउदीन ने अपने काज़ी से पूछा कि हिन्दुओं के बारे में शराह क्या है ? आगे से काज़ी ने उत्तर दिया, "हिन्दू धरातल के समान नीच है, यदि उनसे चांदी मांगी जाए तो उन्हें बड़ी नम्रता से सोना पेश करना चाहिए, और यदि कोई मुसलमान किसी हिन्दू के ऊपर थूकना चाहे तो उस हिन्दू को अपना मुंह पूरी तरह खोल देना चाहिए, खुदा ने हिन्दुओं को मुसलमानों के गुलाम बनने के लिए ही बनाया है। हज़रत साहिब का हुकम है कि यदि हिन्दू इसलाम कबूल न करे तो उन्हें कैद कर लिया जाए और कष्ट देने चाहिएं तथा अंत में मार मिटाना चाहिए, उनकी संपत्ति ज़ब्त कर लेनी चाहिए।

(5) 'त्वारीख अलाई' अथवा 'खजाइनउल फतह' में अमीर खुसरो लिखता है कि जब पातशाह फीरोज शाह तुगलक (1351-1388) ने भोपाल के इलाके में भिलसा शहर पर विजय पायी तो उसने

वहां के सारे हिन्दू मंदिर गिरा दिए तथा उनमें पड़ी हुई मूर्तियों को वहां से उठा ले गये। उन्हें उसने अपने किले के दरवाजे के आगे रख दिया। वह उन मूर्तियों को रोज़ाना एक हजार हिंदुओं के लहू से स्नान कराया करता था।

वी. ए. स्मिथ 'इण्डिया इन मुस्लिम पीरियड' में पृष्ठ 250 पर लिखता है, "कोराला के हिन्दुओं को जिन्होंने नया मंदिर बनवाया था, उस (फीरोज शाह तुगलक) ने अपनी स्त्रियों (महलों) के सामने कत्ल किया ताकि सभी हिन्दुओं को जो अपने जीवनदान के बदले में जज़ीआ या दण्ड भरते थे, को यह पता लग जाये कि मुसलमानी राज्य में कोई हिन्दू ऐसी शैतानी भरी करतूत नहीं कर सकता।"

तुगलकों के पश्चात सैयद तथा फिर लोधी आए। वे सारे मजहबी ईर्ष्या से भरे हुए थे। उनकी हकूमत के समय में भी खून-खराबे, जुल्म व दंगेबाजी की झांकियों के अतिरिक्त और कुछ कम ही मिला।

गुरू नानक काल

सन् 1206 से 1526 तक पठानों के पांच खानदानों ने हिन्दुस्तान पर राज्य किया। जब गुरु नानक देव जी का प्रकाश (सन् 1469) में हुआ तब अंतिम खानदान का पहला बादशाह बहिलोल लोधी दिल्ली के सिंहासन पर बैठा हुआ था। उसकी मृत्यु के उपरांत दिल्ली तख्त पर उसका पुत्र सिकंदर लोधी बैठा जिसने 1489 से 1517 तक राज्य किया। इसने दिल्ली के स्थान पर आगरा को अपनी राजधानी बनाया। इसने जितने समय तक राज्य किया, हिंदू जनता पर विशेष कर, बहुत सख्तियां कीं। इसने ही 1490 में बनारस मे कबीर साहिब को शारीरिक कष्ट दिये थे—मस्त हाथी के सामने फेंक दिया था। डा० लतीफ उसके राज्य के बारे में लिखते हैं :

> "उस समय धोखा, फरेब, ठगी, चोरी तथा चालाकी का ही राज्य था। हिन्दुस्तान की हर नुकड़ पर बेचैनी तथा घबराहट थी। सारे हिन्दुस्तान में केवल पाप, जुलम, ऐशो-इशरत ही मिल सकते थे।"

हिस्टरी आफ इण्डिया के पृष्ठ 410 पर एलफिनसन लिखता है : "वह थोड़े से हठधर्मियों में से था जो हिन्दुस्तान के तख़्त पर बैठे। जो शहर तथा किले उसने हिन्दुओं से छीने, उसने उनमें सब

मंदिर गिरा दिये। उसने अपने राज्य में हिंदुओं को तीर्थ-यात्रा करने से तथा कई हिन्दू त्योहारों के समय पवित्र नदियों में स्नान करने से वर्जित कर दिया। एक बार उसने अपने मज़हबी जोश, बेइनसाफी व बेरहमी की सीमा ही लांघ दी। एक ब्राह्मण यह प्रचार करता था कि सभी धर्म, यदि उन पर सच्चे दिल से चला जाये, ईश्वर की दृष्टि में एक समान स्वीकार्य हैं। उसने उस ब्राह्मण को अपने सामने बुलवाकर आदेश दिया कि बारह काजिओं के संग अपनी राय पर चर्चा करो। जब उसने अपनी सहनशीलता भरे उसूलों को छोड़ने से न कर दी तो उसे जान से मार दिया गया।

हिन्दुओं को जज़िया (हिन्दू टैक्स) भी देना पड़ता था। यह हिन्दुओं को, मुसलमान राज्य में जीने के लिए देना पड़ता था। जज़िया चाहे होता नाम-मात्र का था पर हिन्दुओं को स्वयं जाकर राजकोश में जमा करवाना होता था। वहां पर उन्हें जिस प्रकार से ज़लील किया जाता था, वह और भी बुरी बात थी।

इस सारी हालत को गुरु नानक देव जी ने इस प्रकार कलम-बद्ध किया है :

कलि काती, राजे कासाई, धरमु पंख करि उडरिआ।
कूड़ अमावस, सचु चंद्रमा, दीसै नाही कह चड़िया॥
(वार माझ पृ. 145)

गुरूदेव कहते हैं कि इनसानीयत के रक्षक, राजा लोग शिकारी की भांति हर समय लोगों को लूटने की ताक में बैठे रहते थे। नौकर चाकर उस राजा शेर के नाखूनों की भांति थे, जिन्होंने जनता के कलेजे पर घाव करके अपने मुंह सदा खून से भरे रखना एक स्वाभाविक कर्म समझा हुआ है। राजे-शेर तो मास की बोटियां ही खाते हैं, परंतु अहलकार गरीबों की पिसाई करके, लहू चाटने से भी नहीं हटते थे। यथा:

'राजे सीह, मुकदम कुते॥ जाइ जगाइनि् बैठे सुते॥
चाकर नहदा पाइनि् घाउ॥ रतु पितु कुतिहो चटि जाहु॥
(वार मलार पृ. 1288)

या फिर

रतु पीणे राजे सिरै उपरि रखीअहि, ऐवै जापै भाउ॥
(माझ की वार, महला १, पृ. 142)

राजे रजवाड़े जनता का ख्याल नहीं करने थे बल्कि ऐशो आराम में व्यस्त रहते थे। 'बाबर वाणो' में तो सतिगुरु साहिबान ने फ़ुर्माया है :

साहां सुरति गवाईआ, रंगि तमासै चाइ ।।

(राग आसा, पृ. 417)

भाई गुरदास जो ने इस दशा को अपने इन शब्दों में स्पष्ट किया है :

कलि आई कुते मुही, साज होआ मुरदार गुसाई ।।
राजे पाप कमांवदे, उलटी वाड़ खेत कउ खाई ।।
परजा अंधी गिआन बिन, कूड़ कुसति मुखहु अलाई ।।

जहां मुसलमान राजा तथा जनता हिन्दुओं पर अत्यार करते थे वहां हिदुओं में से वे लोग जो सरकारी नौकर थे, भो अपने जाति भाइयों पर अत्याचार करते थे। जिस प्रकार एक प्रशिक्षित बाज पंछियों को पकड़-पकड़ा कर अपने मालिक के पास ले जाता है, जिस प्रकार प्रशिक्षित किया हुआ हिरन दूसरे हिरनों को पकड़वाने में सहायक होता है, उसी प्रकार ही गुरु साहिबान की नज़रों में ये पढ़े-लिखे लोग ही थे जो गरीबों का लहू पो रहे थे। यथा :

हरणा बाजां ते सिकदारां, एना पड़िआ नाउ ।
फांधी लगी जाति फहाइनि, अगै नाही थाउ ।।

(वार मलार पृ. 1288

इस राजसी, धार्मिक तथा सामाजिक दशा को इस प्रकार भी वर्णित किया जा सकता है कि उस समय राज्य "लोभ" का था, चौकीदारी 'काम" की थी, सरकार 'कूड़' की थी, जनता अज्ञानता के अँधेरे में फँसी हुई थी, सत्य तथा सदाचार उड़ गया था, धर्म के ठेकेदार धर्म को बेच कर खा रहे थे। गुरुदेव के शब्दों में :

लबु पापु दुइ राजा महता, कुड़ होआ सिकदारु ।
कामु नेबु सदि पुछीऐ, बहि बहि करे बीचारु ।
अंधी रयति, गिआन विहूणी, भाहि भरे मुरदारु ।
गिआनी नचहि वाजे वावहि, रूप करहि सीगारु ।।
उचे कूकहि वादा गावहि, जोधा का विचारु ।।

(वार आसा पृ. 469)

ऐसे भयानक राजसी वातावरण में 15 अप्रैल, 1469 (20 बैसाख संवत 1526) को गुरु नानक साहिब का प्रकाश हुआ।

5

तलवंडी में

गुरू नानक देव जी के पिता का नाम महिता कालू था। महिता जी इलाके के जिमींदार राय बुलार के पटवारी थे। गुरू जी को माता का नाम, माता त्रिपता जी था। आप जी को एक बड़ी बहन थी, जिसका नाम था, नानकी। वे आप से पाँच वर्ष बड़ी थीं।

जन्म साखियों तथा अन्य पुरातन इतिहासिक पुस्तकों में यह लिखा हुआ मिलता है कि गुरू जी बचपन से ही प्रभु प्रेम में रमे रहते थे। बच्चों के संग खेलते समय और अपने खेतों में विचरण करते हुए भी उनकी लिव प्रभु चरणों में जुड़ी रहती थी। आप उन कार्यों में विशेष रुचि रखते थे जो कार्य लोग धर्म के नाम पर करते थे। आप साधु संतों तथा भिन्न-भिन्न धर्मों के नेताओं के विचार सुनने में विशेष रुचि रखते थे।

विद्या की प्राप्ति

सात वर्ष की आयु में आप को गोपाल पंडित के पास पढ़ने के लिए भेजा गया जिससे आपने हिन्दी भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। 13 वर्षों की आयु में आप को फारसी की शिक्षा के लिए मौलवी कुतबदीन के पास पढ़ने के लिए भेजा गया। संस्कृत भाषा का ज्ञान आपने पंडित बृज लाल से प्राप्त किया। गुरू जी विद्या प्राप्ति में अन्य सभी बच्चों से बहुत अधिक होशियार थे। इसके साथ-साथ आप अपने अध्यापकों के साथ प्रभु के बारे में तथा धर्म के बारे में चर्चा करते रहते थे। आपके अध्यापक जब आप से छोटी आयु में इतने गंभीर विचार सुनते तो आपकी रोशन दिमागी के सामने शीश झुकाते। इन गुणों के कारण ही गुरू जी तलवंडी निवासियों में हरमन प्यारे हो गये।

जनेऊ की रस्म

जब गुरू जी नौ वर्ष के हुए तो माता-पिता ने आप को जनेऊ डलवाने की सोची क्योंकि ब्राह्मणी धर्म के अनुसार शूद्रों को छोड़कर बाकी तीन वर्णों के लोगों को जनेऊ धारण करना बहुत आवश्यक बताया गया है। हिंदू मत के अनुसार कहा जाता था कि जनेऊ धारण करने से मनुष्य का आत्मिक जन्म होता है और वह हिन्दू धर्म में प्रवेश करता है।

इस समय आपके माता पिता की ओर से सारे रिश्तेदारों को, सज्जन मित्रों को तथा तलवंडी के गणमान्य सज्जनों को आमन्त्रित किया गया। घर के पुरोहित पंडित हरदयाल को जनेऊ की रस्म अदा करने के लिए बुलाया गया। अतः एक भारी जन-समारोह हो गया। पंडित जी ने शास्त्रों की रीति नीति आरंभ की। देव पूजा, ग्रह पूजा आदि करने के पश्चात् हाथ में जनेऊ ले कर वे गुरू जी के गले में डालने के लिये तैयार हो गया। परंतु गुरू जी ने उसका हाथ पकड़ लिया और जनेऊ डलवाने से इनकार कर दिया। चाहे माता पिता तथा अन्य रिश्तेदारों ने बहुत समझाया कि शास्त्रों की रीति-नीति की पालना करना बहुत आवश्यक है, और यह रीति पिता-पितामा से चली आई है और इस धर्म-रीति का विरोध नहीं करना चाहिए, परंतु गुरू जी बड़ी दलेरी से अपने विचारों पर अटल रहे और जनेऊ को नहीं पहना। आपने उल्टे पंडित को उपदेश दिया कि जनेऊ डालने का मनुष्य की आत्मा को कोई लाभ नहीं है, इसके स्थान पर तो मनुष्य को प्रभु प्यार तथा सदाचारक गुणों—दया, संतोष, ऊँचे व निर्मल किरदार का मालिक बनना चाहिए, तो ही मनुष्य की आत्मा पवित्र हो सकती है और वह सच्चा धर्मावलंबी कहला सकता है। गुरू जी ने अपनी बाणी में इन विचारों का उल्लेख इस प्रकार किया है :

दइआ कपाह संतोखु सूतु, जतु गंढी सतु वटु ॥
ऐहु जनेऊ जीअ का, हई त पाडे घतु ॥
ना ऐहु तुटै, न मलु लगै, ना ऐहु जले न जाइ ॥......
धंनु सु माणस नानका, जो गलि चले पाइ ॥
तगु कपाहहु कतीऐ, जो गलि चले पाइ ॥
तगु सु माणस नानका, बाम्ण वटे आइ ॥
कुहि बकरा रिंनि् खाइआ, सभु को आखै पाइ ॥
होइ पुराणा सुटीऐ, भी फिरि पाईऐ होरु ॥
नानक तगु न तुटई, जे तगि होवै जोरु ॥

(सलोक महला १, वार आसा, पृ 471)

विवाह तथा संतान

जब गुरू नानक देव जी की आयु 18 वर्ष की हुई तो आपके माता-पिता ने आपका विवाह बटाले के बाबा मूल चंद की सपुत्री (माता) सुलखणी जी से कर दिया। आपके घर दो साहिबज़ादों

(पुत्रों) ने जन्म लिया। बड़े का नाम था बाबा श्री चंद जी तथा छोटे नाम था बाबा लखमी दास जी।

व्यवसाय

गुरू साहिबान जहाँ प्रभु प्रेम में रमे रहते थे, वहीं उपजीविका हेतु अपने हाथों से परिश्रम भी करते थे। जन्म-साखियों में चाहे इस संबंध में बहुत हवाले नहीं मिलते परंतु "भैंसें चराने" वाली साखी से यह पता चलता है कि गुरू जी खेतों में अपनी फसल की देख-रेख करते थे और जब खेतिहर मज़दूर न हों तो पशुओं की देख-भाल भी किया करते थे।

सच्चे सौदे वाली साखी सिख इतिहास में बहुत मशहूर है। इससे पता चलता है कि गुरू जी दुकानदारी व व्यापार भी करते थे। वे अपने साथी, भाई मरदाना जी के संग चूहड़काणे आदि से, बेचने के लिए वस्तुएँ खरीदने के लिए जाते थे और तलवंडी में अपनी दुकान पर उन्हें बेचते थे। इतिहासकार जीवन की आम घटनाओं का वर्णन नहीं करते, जब कोई विशेष घटना घट जाती है तो उसे इतिहास का विशेष अंग बना लेते हैं। इसलिए ही जन्मसाखियों में इस बात का तो ज़िक्र नहीं है कि सतगुरु साहिबान आमतौर पर वस्तुए खरीदने जाते थे और व्यापार करते थे, परंतु एक बार जब उन्हें चूहड़काण बार में भूखे संतां का एक टाला मिल गयी तो आपने उनको अन्न-पानी तथा वस्त्रों सहित सेवा की और इस कार्य को "सच्चा सौदा" कहा। वहाँ पर अब 'सच्चा सौदा' नाम का गुरुद्वारा स्थित है।

कीर्तन व संगीत से प्यार

गुरु जी का कीर्तन से विशेष प्यार था। वे कीर्तन को प्रभु के संग जुड़ने का सबसे उत्तम साधन समझते थे। प्रभु प्यार के गीत, गुरबाणी तो आपके हृदय में से निर्मल झरने की भांति स्वतः ही फूटते रहते थे और आप उन्हें रागों की बंदिश में बांध लेते थे। भाई मर्दाना जी के संग मिलकर दैवी बाणी का कीर्तन करते थे।

भाई मर्दाना जी तलवंडी के मिरासी मीर बादरे के पुत्र थे और आयु में गुरू जी से 9 वर्ष 2 मास बड़े थे। मर्दाना जी को राग का बहुत शौक था और रबाब उनका मन-भावन साज था। कीर्तन-राग ने मर्दाना जी तथा गुरु जी को आयुपर्यंत साथी बना दिया। लगभग 50 वर्ष तक भाई मर्दाना जी गुरु जी की संगत में रहे और उनका देहांत भी, करतारपुर में, गुरू नानक देव जी की संगत करते हुए ही हुआ।

6

सुलतानपुर में

बीबी नानकी जी के पति भाई जै राम जी सुलतानपुर के नवाब दौलतखान लोधी के पास कर्मचारी थे। वे गुरु नानक जी को तलवंडी से सुलतानपुर ले आये और मोदीखाने (रसद, अन्न आदि के गोदाम) का इंचार्ज लगवा दिया।

उस समय किसान लोग आम तौर पर टैक्स अनाज के रूप में अदा किया करते थे, जो कि सरकारी गोदाम (मोदीखाने) में जमा हो जाता था। सरकारी कर्मचारियों को भी वेतन का अधिकतर हिस्सा इसी अनाज में से ही मिलता था। अंत: गुरू जी को प्राप्त हुई, बांटी या बेची गयी रसद का हिसाब रखना पड़ता था। जो रसद या अनाज बेचा जाता था उसका अर्जित किया हुआ रुपया पैसा सरकारी खजाने में जमा करवाना होता था। अनाज को चोरी आदि से बचाने का काम भी मोदी का ही होता था।

जब गुरू जी ने मोदी का काम संभाला तो उनकी आयु साढ़े पैंतीस वर्ष की हो चुकी थी। यह नौकरी मिलने में उन्हें तलवंडी में हाट व्यापार का अनुभव बहुत काम आया।

अनाज रसद का ठीक-ठीक हिसाब रखना मोदी की ईमानदारी पर निर्भर करता था। आम तौर पर मोदी सरकारी अनाज को निजी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रयोग कर लेते थे और कई तो हिसाब किताब में हेरा-फेरी करके रुपया बटोर लेते थे। इसलिए "मोदी खाने" के हिसाब की जांच समय-समय पर होती रहती थी :

गुरु जी अपनी कमाई का अधिकतर हिस्सा जरूरतमंदों की आवश्यकता पूर्ति हेतु व्यय कर देते थे। भाईचारे की सेवा ने उन्हें हरमन प्यारा बना दिया। इस बात का ज़िक्र जन्म-साखी वाले ने इस प्रकार किया है :

"ऐसा कंम करन जो सभ कोई खुशी होवे । सभ लोक आखनि जो वाह वाह, कोई भला है । सभ को खान आगे सुपारश करे । खान बहुत खुशी होआ ।"

ईमानदारी तथा जनसेवा के कारण जहां आम लोग गुरू जी का सम्मान करते थे, वहां रिश्वतखोर कर्मचारी आपसे बहुत ईर्ष्या करते थे क्योंकि गुरू जी की उपस्थिति में वे हेरा-फेरी नहीं कर सकते थे। ऐसे भ्रष्ट कर्मचारियों के शोर डालने पर एक बार गुरू जी के हिसाब-किताब तथा मोदीखाने के माल की जांच की गयी। जांच होने पर, मोदीखाने में से अनाज कुछ अधिक निकल आया। वास्तव में जो वेतन आपको अनाज के रूप में मिलता था, उसे आप मोदीखाने में ही रख लिया करते थे, जिससे आप आये-गये की सेवा तथा जरूरतमंदों की आवश्यकताओं की पूर्ति किया करते थे। यह गुरू जी की अपनी ही रसद थी, जो कि हिसाब के अनुसार अधिक थी। लम्बी जांच होने के पश्चात गुरू जी की शोभा बढ़ी और फैल गयी। नवाब दौलत खान तो एक प्रकार से गुरू जी का मुरीद ही बन गया।

मोदी बनने के पश्चात गुरू जी ने अपने परिवार को तथा भाई मर्दाना जी को सुलतानपुर में बुला लिया।

नित्य-प्रति की क्रिया

सुलतानपुर के पास काली वेईं नदी बहा करती थी। गुरू जी प्रतिदिन सुबह, सवा पहर रात के रहते, भाई मर्दाना जी के संग वेईं नदी के पास आ जाते थे। स्नान करने के पश्चात प्रभु की स्तुति में जुड़ जाते। कीर्तन सुनने के लिए और भी कई लोग आ जाते थे। शनैः शनैः एक बहुत बड़ा सतसंग होने लग पड़ा। गुरू जी लोगों को फोकट कर्मों, पाखण्डों, देवी देवताओं की पूजा को त्यागने का उपदेश देते थे और सब को एक अकालपुरख, एकीश्वर की शरण में आने को कहते। वे लोगों को समझाते कि प्रभु के संग जुड़े रहने का एकाएक साधन उसकी स्तुति करना, उसके नाम का सुमिरन करना है और "खलकत में से खालिक" के दर्शन करने हैं। जन-मानस की सेवा ही प्रभु की सेवा है। गुरू जी के इस प्रचार के फलस्वरूप बहुत से लोगों ने दिखावे के धर्म को त्याग दिया और गुरू जी के बताये मार्ग पर चलने लग पड़े। इन लोगों में से मैलसीहां का नम्बरदार भाई भागीरथ भी था। उसने दुर्गा की पूजा छोड़ दी और गुरु जी का सिख बन गया।

ब्राह्मण की पुत्री का विवाह

यह सुनकर कि गुरू जी जरूरतमंदों को आवश्यकताओं को पूरा करने में बहुत खुलदिली दिखाते हैं, एक ब्राह्मण स्वयं गुरू जी के पास आया। उसने विनती की कि रूपये पैसे से उसका हाथ बहुत तंग है और वह अपनी जवान पुत्री का विवाह करने में असमर्थ है। गुरु जी ने भाई भागीरथ जी को लाहौर भेजा ताकि वह विवाह के लिए सामान ले आये। जब भाई भागीरथ जी सामान ले आये तो उस गरीब ब्राह्मण की पुत्री का विवाह कर दिया गया।

लाहौर में भाई भागीरथ जी एक व्यापारी मनसुख को मिले थे। मनसुख सांसारिक वस्तुओं से मोह-प्यार करने वाला व्यक्ति था उसका विचार था कि साध-संत तो निकम्मे व्यक्ति होते हैं जो दूसरों की कमाई पर ऐश लूटते हैं। जब उसने गुरू नानक देव जी के बारे में सुना कि आप परिश्रम करके पैसा कमाते हैं और अपनी कमाई में से जरूरतमंदों की सेवा करते हैं, तो उसका मन गुरू जी के दर्शन करने के लिए उत्सुक हो गया। वह भाई भागीरथ जी के साथ सुलतानपुर आ गया। गुरू जी की संगत करने से उसके विचार ही बदल गये। सांसारिक मोह तो जैसे उड़ ही गया था। परंतु गुरू जी के कहने पर वह फिर लाहौर वापिस आ गया और व्यापार करने लगा। परंतु अब वह केवल व्यापारी ही नहीं रहा, बल्कि गुरू जी की शिक्षा को प्रचारित करने वाला गुरसिख बन गया था।

भाई मनसुख दूर-दूर तक व्यापार करने जाता था। एक बार वह संगलाद्वीप (श्री लंका) में भी गया। वहां का राजा, भाई साहिब के विचारों, चरित्र व व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना न रह सका। वह उनसे इतना प्रभावित हुआ कि गुरु नानक पातशाह के चरणों का सेवक बन गया। गुरू जी के दर्शनों के लिए उसके मन में प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई :

"बाबा देखै धिआन धर"

गुरु साहिबान को मोदीखाने में नौकरी करते हुए लगभग पौने तीन साल हो गये थे। उनके बहुत से श्रद्धालु भी बन गये थे और सुलतानपुर के सतसंग की शोभा दूर-दूर तक फैल गयी थी। पर गुरु जी का मन इस सब से संतुष्ट नहीं था। सुलतान पुर तो चाहे स्वर्ग बनता जा रहा था, परंतु बाकी का संसार तो नर्क बना हुआ था। लोग प्रभु को भूल कर कर्म-कांड में पड़ कर अपना जीवन व्यर्थ गंवा

रहे थे, धार्मिक नेता स्वयं गुमराह हुए पड़े थे। समाज अनेकों कुरीतियों से भरा पड़ा था। धार्मिक नेताओं द्वारा सिखाये गये लोग आपस में ही लड़-लड़ कर मर रहे थे। राजा जिनका काम परजा को खुशहाल रखना होता है, उल्टे परजा का खून चूस रहे थे। सभी ओर हाहाकार मची हुई हुई थी। और गुरु जी इस जलते हुए संसार में ठंड व शीतलता बांटने की तैयारी कर रहे थे।

एक दिन गुरु जी रोज की भांति वेईं नदी में स्नान करने के लिए गये, और दो दिन तक लापता ही रहे। तीसरे दिन, उस स्थान से लगभग दो मील दूर, प्रकट हुए। इन दो दिनों के बीच वे कहां रहे, इसके बारे में भिन्न भिन्न विचार दिये जाते हैं। जन्म साखियां तथा अन्य बहुत से विद्वान यह मानते हैं कि गुरू जी उस समय अकालपुरख के दरबार में हाज़िर हुए, जहां अकालपुरख ने उन्हें आध्यात्मिक शिक्षा देने तथा दुनियां के कल्याण का अधिकार दिया। दूसरा विचार यह है कि सतगुरू जी वेईं नदी के उस छोर पर चले गये थे और अच्छी तरह सोच विचार के पश्चात उन्होंने अपना आगामी कार्यक्रम निश्चित किया कि "है है करदी लुकाई" (हा-हा कार करते जनमानस में) किसी प्रकार शीतलता बांटी जाये। यहीं पर उन्होंने अपने प्रचारक दौरों (उदासियों) का कार्यक्रम बनाया।

दूसरा विचार ही ठीक लगता है क्योंकि सतगुरू जी ने अपनी बाणी में "सूक्ष्म ब्रह्म" के अस्तित्व को माना है, जिसका कोई शरीर नहीं है, चक्र-चिन्ह नहीं है और न ही वह किसी स्थान विशेष पर किसी राजा की भांति दरबार सजा कर ही बैठा हुआ है। वह तो अपनी कुदरत के ज़र्रे-ज़र्रे में बसा हुआ है और उसे इन आंखों से देखा नहीं जा सकता, बल्कि अनुभव ही किया जा सकता है। राजाओं के दरबार की भांति स्वर्गों में या सातवें आसमान पर ईश्वर के दरबार का विचार इसाई मत या इसलाम का तो हो सकता है, पर सिखी का नहीं। वैसे भी गुरु जी तो अपने जन्म से ही गुरू थे। इसलिए उन्हें दुबारा गुरु का अधिकार प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। उन्होंने तो नौ वर्ष की आयु में ही पंडित हरदयाल को सच्चे जनेऊ का ज्ञान प्रदान किया था। अब तक तो वह भाई मर्दाना जी के साथ मिल कर 'बाणी' के कीर्तन द्वारा, सैंकड़ों लोगों के जीवन को पलट चुके थे, जो कि उन्हें अकालपुरख के संग एकमेव होने के पश्चात प्राप्त होती थी। भाई भागीरथ तथा भाई मनसुख

आदि अनेकों व्यक्तियों को आप कर्मकांडी जीवन तथा पराधर्मी विचारों के प्रभावों से मोड़कर सिखो को निधि प्रदान कर चुके थे। यह सब कुछ उन्होंने अपना वही 'अधिकार' प्रयोग करके किया था जो उन्हें जन्म से ही प्राप्त था। भाई गुरदास जो इस संबंध में बडा स्पष्ट लिखते हैं :

> सुणी पुकार दातार प्रभ, गुरू नानक जग माहि पठाया ॥
> ....
> ....
>
> कलि तारण गुरु नानक आइिआ ॥ (वार १)

जब गुरू नानक जी का प्रकाश ही "कलि तारण' हेतु हुआ था, तो उन्हें दुबारा ईश्वर के दरबार में जाने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

न को हिंदू, न मुसलमान

वेईं नदी से बाहर आकर सतगुरु जी कब्रिस्तान में आ गये। उनके प्रकट होने का समाचार सुनकर सुलतान पुर के लोग वहां आकर इकट्ठे हो गये। इस इकट्ठ में गुरू जो ने जो प्रथम उपदेश दिया वह था न को हिंदू, न मुसलमान। इसका अर्थ यह था कि लोग हिन्दू मुसलमान के भेद भाव को छोड़ दें, सारे जनमानस में ईश्वर को देखें, आपस से लड़ने-झगड़ने के स्थान पर ऊंचे तथा निर्मल आध्यात्मिक तथा सदाचारक गुणों को धारण करके अपने मानव जीवन को सफल करें।

सुलतानपुर की मस्जिद में

कब्रिस्तान में नवाब दौलत खान तथा सुलतानपुर का काज़ी भी आया हुआ था। उन्होंने गुरु जी को कहा कि यदि तुम हिन्दू मुसलमान के भेद-भाव को नहीं मानते और सारी कायनात में कर्ता के निवास को मानते हो तो आओ ! हमारे साथ मस्जिद में उसी कर्ता की निमाज पढ़ो।

उस समय पेशी का निमाज (दुपैहर सूर्य ढलने के समय की निमाज) का समय था। सतगुरु जो, नवाब, काजी तथा दूसरे मुसलमानों सहित सुलतानपुर की मस्जिद में आ गये। सभी लोग निमाज

गुजारने के लिए खड़े हो गये। काज़ी के पीछे सभी निमाज़ पढ़ने लगे। पर गुरू जी अडिग खड़े रहे और मुस्कुराते रहे। निमाज़ समाप्त हुई। काज़ी ने एतराज़ किया कि गुरू जी ने निमाज़ में हाजिर न होकर निमाज़ का अपमान किया है। सतगुरू साहिबान ने बड़ी दलेरी से उत्तर दिया, "काज़ी जी ! आपका मन तो निमाज में ही नहीं था। आप मुंह से तो निमाज़ पढ़ रहे थे, परंतु ध्यान आपका अपने घर में ही था। आप तो सोच रहे थे कि कहीं आपकी घोड़ी का बच्चा कूएं में न गिर पड़े।"

जब नवाब ने कहा, "आपने मेरे साथ ही निमाज़ पढ़ लेनी थी।" तो सतगुरू साहिबान ने कहा, "नवाब साहिब ! आप तो कंधार में घोड़े खरीद रहे थे, मैं निमाज़ किसके संग पढ़ता ?" नवाब भी निरुत्तर हो गया।

यह साखी जहां 'इक मन इक चित्त' हो कर प्रभु भक्ति करने का उपदेश देती है, वहीं सतिगुरु साहिबान की निर्भयता व निडरता को भी प्रस्तुत करती है। मुसलमानों के राज्य में, मुसलमानी धर्म स्थान पर, वहां के नवाब तथा काज़ी की मौजूदगी में, निमाज़ के समय मुस्कुराते रहना तथा बाद में खरी-खरी सुना देना, यह केवल गुरु नानक जैसे मर्द, शूरवीर, संत सिपाही का ही कार्य था।

चढ़िया सोधण धरत लुकाई

उपरोक्त घटना के पश्चात आप जी ने मोदीखाने की नौकरी छोड़ दी और बाल बच्चों को बीबी नानकी जी के पास सौंप दिया और सब को बता दिया कि अब वे सत्य धर्म के प्रचार के लिए संसार की यात्रा पर जायंगे।

भाई गुरदास जी ने सतगुरू साहिबान के इस निर्णय का वर्णन करते हुए लिखा है :

> बाबा देखै धिआन धरि, जलती सभ पथमी दिस आई ॥
> बाझहु गुरू गबार है, है है करदी सणी लुकाई।
> बाबे भेख बणाइआ, उदासी की रीत चलाई।
> चढ़िआ सोधण धरति लुकाई। (वार १)

सतगुरू साहिबान ने कुल कितने प्रचारक दौरे (उदासियां) किये, इन प्रचारक दौरों का रास्ता कौन सा था और प्रत्येक दौरा कितने-

कितने समय का था, इसके बारे में इतिहासकारों में मतभेद पाये जाते हैं। नयी खोज के अनुसार सतगुरू साहिबान ने तीन बड़े प्रचारक दौरे किये थे। प्रिंसीपल साहिब सिंघ जी ने इनके समय की तालिका इस प्रकार बनाई है :

(क) प्रथम प्रचारक दौरा (पहली उदासी) हिंदू तीर्थों का :
सितम्बर 1507 से दिसम्बर 1515 तक।

(ख) दूसरा प्रचारक दौरा (दूसरी उदासी) सुमेर पर्वत का :
सितम्बर 1517 से 1518 के अर्द्धकाल तक।

(ग) तीसरा प्रचारक दौरा (तीसरी उदासी)
इसलामी धर्म स्थानों पर : 1518 से 1521 तक।

"उदासियों" (प्रचारक दौरों) के बारे में सतगुरु साहिबान ने अपनी बाणी में यह स्पष्ट किया है कि ये उदासियां संसार से उपरामता के कारण नहीं थीं बल्कि भूले-भटके जीवों को सत्य धर्म का मार्ग दिखा कर उनका उद्धार करने के लिए थीं। इनका उद्देश्य सच्चे धार्मिक पुरुषों की खोज करके तथा गलत कार्यों में व्यस्त धार्मिक नेताओं को ठीक राह दिखलाकर, उन्हें जलते हुए संसार में गुरमत ज्ञान के द्वारा शीतलता बांटने के कार्य में लगाना था। "सिद्ध गोस्टि" नामक की बाणी में, योगियों के प्रश्न के उत्तर में गुरू जी ने उदासी के मनोरथ को दर्शाया है। यथा :

सिद्ध-योगिओं के प्रश्न :

किसु कारणि ग्रिहु तजिओ उदासी ॥
किसु कारणि इहु भेखु निवासी ॥
किसु वखर के तुम वणजारे ॥
किउ करि साथु लंघावहु पारे ॥

सतगुरू साहिबान का उत्तर :

गुरमुखि खोजत भए उदासी ॥
दरसन कै ताई भेख निवासी ॥
साच वखर के हम वणजारे ॥
नानक गुरमुखि उतरसि पारे ॥

(रामकली, सिद्ध गोसटि पृ 9 9)

प्रथम प्रचारक दौरा (उदासी) 7

गुरू नानक साहिब के प्रचारक दौरों को 'उदासी" शब्द से सबोधित किया गया है। यहां "उदासी" शब्द से तात्पर्य उपरामता या उदासीनता या घर-बार छोड़कर संन्यास धारण करने से कतई नहीं है।

लाहौर में

भाई मरदाना जी को साथ लेकर गुरू जी सितम्बर 1507 में सुलतानपुर से तलवंडी को चल पड़े। गुरू जी का इरादा अपने वृद्ध माता-पिता को प्रचारक दौरों पर जाने की सूचना देना था।

लाहौर पहुँच कर गुरू जी ने जवाहरमल के चौहटे में एक कूएं के पास पीपल के नीचे अपना डेरा कर लिया। अब यहां पर उनकी याद में गुरुद्वारा बना हुआ है। लाहौर के एक धनाढय क्षत्रीय दुनी चन्द ने ब्राहमणों तथा साधुओं को अपने पिता के नाम पर श्राद्ध पर भोजन पर बुलाया हुआ था। दूसरे हिन्दुओं की भांति उसका भी यह विश्वास था कि श्राद्धों के दिनों में (भाद्रव सुदी 15 से असु सुदी 15 तक अथवा असू की पूर्णिमा से मसिया तक) ब्राहमणों को खिलाया हुआ अनाज तथा उन्हें किया गया दान "पित्तर लोक" में मर चुके प्राणियों को पहुँच जाता है। गुरू जी ने उसे समझाया कि "पितृ लोक" नाम की कोई चीज है ही नहीं। मृत्यु के पश्चात अपने किये हुए कर्मों के अनुसार या तो मनुष्य प्रभु में लीन हो जाता है या फिर दूसरी योनियों में पड़ जाता है। ब्राहमणों का खाया हुआ भोजन भी और दान-पुन्य की वस्तुएं भी, मर चुके प्राणी को नहीं मिलतीं, बल्कि केवल ब्राहमणों की उदरपूर्ति का साधन ही बनती हैं।

माता-पिता की सेवा उनके जीते-जी ही करनी चाहिए। दुनी चंद को यह भी समझाया कि उसके द्वारा एकत्र किया हुआ धन-माल उसकी मृत्यु के पश्चात इस दुनियां में ही रह जाना है, इसलिए धन पदार्थों को गरीबों तथा जरूरतमंद लोगों को बांट देना चाहिए। ऐसा करने से प्रभु प्रसन्न होता है।

तलवंडी में

गुरू नानक देव जी तलवंडी में अपने माता-पिता को मिले। बाबा कालू जी की आयु उस समय लगभग 67 वर्ष की हो चुकी थी। गुरू जी का "प्रचारक दौरों" पर जाने के बारे में सुनकर वे बहुत हैरान तथा

दुःखी हुए। माता-पिता को दुख इस बात का था कि बुढ़ापे में उनका सहायता करने वाला, एकाएक पुत्र, उन्हें छोडकर लम्बे समय के लिए जा रहा है, उसके वापिस आने तक शायद वे जीते भी होंगे या नहीं। माता-पिता ने बहुत मिन्नतें कीं परंतु सतिगुरूजी अपने निर्णय पर अटल रहे सारे संसार के दुःखों कष्टों के सामने माता-पिता का दुख, पत्नि तथा बच्चों का मोह उन्हें बहुत तुच्छ सा लगता था।

एमनाबाद में

एमनाबाद तलवंडी से लगभग 50 मील की दूरी पर है। तब इसका नाम सैदपुर हुआ करता था, जो सईअदपुर का बिगड़ा हुआ रूप है। यहाँ आप सचमुच नेक परिश्रम करने वाले और अति गरीब व्यक्ति भाई लालो के घर ठहरे। भाई लालो जी बढ़ई का काम करते थे। क्षेत्र के हिन्दुओं तथा विशेष रूप से ब्राहमणों ने इस बात का बहुत बुरा मनाया कि "उच्च क्षत्रीय" जाति का गुरू नानक "नीच शूद्र" लालो के घर में ठहरा है। परंतु सतगुरु साहिबान को इस बात मे कोई अंतर न पड़ा क्योंकि आपका मिशन ही ब्राहमण की वरण-भेद नीति को तोडकर, नीच लोगों को, ऊंचा बनाकर सभी मनुष्यों को बराबर के भाई बनाना था। इसलिए तो आपने कहा था :

> नीचा अंदरि नीच जाति, नीची हू अति नीचु।
> नानकु तिन के संगि साथि, वडिआ सिउ किआ रीस।।
> जिथै नीच समालीअनि, तिथै नदरि तेरी बखसीस।।
>
> (वार सिरी राग, सलोक महला १ पृ. 15)

जाति अभिमानी ब्राहमणों को गुरु जी के विरुद्ध प्रचार करने का तब एक और अवसर मिल गया, जब गुरुजी ने क्षेत्र के नवाब ज़ालिम खां के एक धनाढय अहलकार मलक भागो के प्रीति भोज को ठुकरा दिया। मलिक भागो ने इस ब्रहम भोज पर इलाके भर के साधु संतों, ब्राहमणों तथा नगर के गणमान्य सज्जनों को बुलाया हुआ था। यह भोज वह अपने पिता के श्राद्ध के संबंध में दे रहा था।

मलिक भागो बहुत धनाढ्य व्यक्ति था। इसलिए नगर के लोग उसका बहुत सम्मान करते थे। गुरु जी ने उसके इस ब्रहम भोज के निमंत्रण को ठुकरा दिया तो वह बहुत गुस्से में आया। वह इस बात से बहुत दुःखी था कि गुरू नानक देव एक शूद्र तथा गरीब से व्यक्ति लालो के घर ठहरे हुए थे और उन्होंने उसके ब्रहम भोज में शामिल होने से इनकार कर दिया था।

जब दो-तीन बार निमंत्रण गया, तो गुरू जी ब्रहम भोज पर पहुंच गये, परंतु उन्होंने भोजन सेवन करने से इनकार कर दिया। भरी सभा में गुरू जी ने बड़ी दलेरी से मलिक भागो को कहा कि उसकी कमाई, हेरा-फेरा की कमाई है, रिश्वत की कमाई है। उसने लोगों का हक मारकर धन एकत्र किया हुआ है, उसका भोजन खाना तो गरीबों का खून पीने के तुल्य है। इसके मुकाबले में भाई लालो की अल्प-कमाई धर्म की कमाई है, कड़े परिश्रम की कमाई है। उसकी सूखी भखड़े (कोधरे) की रोटी भी दूध-अमृत के समान है। सतगुरू साहिबान के इस उपदेश का यह प्रभाव पड़ा कि मलिक भागो ने भविष्य में सच्ची व निर्मल कमाई करने का प्रण लिया और वह भाई लालो की भाँति सतगुरु साहिबान की शिक्षाओं का प्रचार करने लग गया।

हरिद्वार में

ऐमनाबाद से गुरू जी हरिद्वार की ओर चल पड़े। हरिद्वार में बैसाखी वाले दिन बहुत भारी मेला लगता था जहाँ पर दूर-दूर से लोग आया करते थे और गंगा नदी में स्नान किया करते थे। यहीं पर ही वे अपने पित्तरों (मर चुके पिता-पितामा) को सूर्य के द्वारा पानी पहुँचाते थे। वे सूर्य की ओर मुँह करके हाथों की कौल भरके पानी को उछालते थे। उनका विश्वास था कि "सूर्य देवता" उस पानी को, उनके पिता पितामा को, कल्पित पितृ लोक में पहुँचा देगा। गुरूजी ने बड़े नाटकीय ढंग से लोगों को इस फोकट कर्म कांड से विवर्जित किया।

गुरूजी गंगा नदी में घुस गये और सूर्योदय के स्थान पर सूर्यास्त की दिशा में मुँह करके पानी उछालने लग पड़े। लोग बड़े हैरान हुए और कहने लगे कि यह कैसा अनजान व्यक्ति आ गया है जो शास्त्रों की शिक्षा के विपरीत उल्टी दिशा में पानी दे रहा है। लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गयी। मुखी पंडितों ने गुरु जी को पूछा, "आप उल्टी दिशा में किसको पानी दे रहे हो?" गुरू जी ने उन्हें ही उल्टा सवाल कर दिया कि तुम सभी सूर्योदय की ओर किसको पानी दे रहो हो? लोगों के कहने पर कि सभी पित्तरों को पानी भेज रहे हैं, गुरु जी ने कहा कि वे तलवंडी में अपने खेतों को पानी दे रहे हैं। पंडितों ने कहा तुम्हारा पानी 300-400 मील दूर तलवंडी में नहीं पहुँच सकता। गुरु जी ने फिर प्रश्न किया कि यदि मेरा पानी तीन चार सौ मील दूर नहीं पहुँच सकता तो तुम्हारा पानी पितृ लोक में कैसे पहुँचेगा, जिस पितृ लोक के बारे में तुम्हारा विश्वास है कि वह लाखों

कोस दूर है। गुरु जी के इतना कहने की देर थी कि लोगों को अपनी भूल का अहसास हो गया कि पितृ लोक को पानी भेजने का कार्य व्यर्थ कर्म कांड है।

हरिद्वार में ही गुरु जी ने एक वैष्णव साधु को दिखावे की पवित्रता रखने से वर्जित किया और मन को शुभ गुणों के द्वारा पवित्र रखने की शिक्षा दी। एक दिन सुबह ही वैष्णव साधु ने वहां पर रसोई (चौंका) बना कर पोचा लगाया और रसोई के चारों ओर 'लकीर' लगा दी। उसने भोजन तयार करने के लिए आग जलाई। गुरु जी ने भाई मर्दाना जी को उस साधु से आग लाने के लिए भेज दिया। मर्दाना जी जब साधु की रसोई के समीप गये तो उनकी परछाईं रसोई के चूल्हे पर पड़ गई। साधु बहुत गुस्से हुआ। वह कहने लगा कि उसकी रसोई अपवित्र हो गई है। गुस्से में वह जलती हुई लकड़ी ले कर भाई मर्दाना जी के पीछे दौड़ते-दौड़ते गुरु जी के पास पहुंच गया। उन्हें देखकर वहां अच्छी तगड़ी भीड़ लग गयी। गुरु जी ने वैष्णव साधु को समझाया कि परमात्मा बाहर की पवित्रता पर नहीं रीझता, बल्कि वह तो उन व्यक्तियों पर रीझता है जो विकारों का त्याग करते हैं और ऊंचे तथा निर्मल गुणों को मन में धारण करके अपने आचरण को ऊंचा बनाते हैं। मनुष्यों को नीच नहीं समझना चाहिए बल्कि बुरी मति जो विकारों की ओर ले जाती है, निर्दयता, परनिंदा तथा क्रोध आदि दुर्गुणों को नीच समझ कर त्यागना चाहिए। इस घटना के समय दिये गये उपदेश को गुरू जी ने अपनी बाणी में इस प्रकार अंकित किया है :

> कुबुधि डूमणी, कुदइिआ कसाइणि,
> परनिंदा घट चूहड़ी, मुठी क्रोधि चंडालि ॥
> कारी कढी किआ थीऐ, जां चारे बैठीआ नालि ॥

(सलोक महला १, सिरी रागु पृ० 91)

गोरख मते की ओर

हरिद्वार से गुरुजी ने गोरख मते की ओर रटन किया। गोरख-मता गोरख नाथ के चेलों, सिद्ध योगियों का एक भारी गढ़ था। यह स्थान पीलीभीत (उत्तर प्रदेश) से लगभग 15 मील की दूरी पर था।

रास्ते में गुरुजी ने कोटद्वार में लोगों को बारह अवतार तथा उसकी मूर्ति की पूजा करने से रोका और एक अकालपुरख की भक्ति करने का उपदेश दिया।

अल्मोड़ा में गुरु जी ने वहां के (चंद जाति के) राजा को मनुष्यों को 'चंडी देवी' की भेंट चढ़ाने के कुकर्म से रोका। आम लोगों को भी समझाया कि पत्थर की मूर्तियों के आगे मनुष्यों की बलि देना एक बहुत बड़ा पाप व अपराध है। मनुष्यों में तो प्रभु निवास करता है, इसलिए उनकी सेवा करनी चाहिए और निर्जीव मूर्तियों के स्थान पर सर्व-व्यापक अकालपुरख की पूजा करनी चाहिए।

गोरखमते में गुरु जी ने योगियों को समझाया कि प्रभु बाहरी पाखण्डों पर खुश नहीं होता। इसलिए योगियों को चाहिए कि वे कई प्रकार के कठिन योग-साधनों, समाधियों, आसनों के स्थान पर शरीर पर राख मलने, कान छिदवाने, घर-घर जा कर शंख-नाद बजा कर मांगने के स्थान पर अपने मन में संतोष, दया, प्रभु प्रीति, सर्वजन का भला आदि गुण धारण करें, प्रभु का सच्चा ज्ञान प्राप्त करें तथा अपना ध्यान (सुरति) प्रभु से जोड़ें। विकार रहित जीवन को ही प्रभु-प्राप्ति की जुगती समझें। यही सच्ची भक्ति है। रिद्धियों सिद्धियों को प्राप्त करने के यत्नों को गुरु जी ने व्यर्थ बताया।

गुरु जी ने समझाया :

जोगु न खिंथा, जोगु न डंडै, जोगु न भसम चड़ाईऐ ॥
जोगु न मुंदी, मूंडि मुडाइऐ, जोगु न सिंङी वाईऐ ॥
जोगु न बाहरि मड़ी मसाणी, जोगु न ताड़ी लाईऐ ॥
जोगु न देसि दिसंतरि भविऐ, जोगु न तीरथि नाईऐ ॥
सतिगुरु भेटै ता सहसा तूटै, धावतु वरजि रहाईऐ ॥
निझरु झरै, सहज धुनि लागै, घर ही परचा पाईऐ ॥

नानक जीवतिआ मरि रहीऐ, ऐसा जोगु कमाईऐ ॥
वाजे बाझहु सिंङी वाजै, तउ निरभउ पदु पाईऐ ॥
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ, जोगु जुगति तउ पाईऐ ॥

(सूही महला १, पृ. 730)

नोट :—जपुजी की पउड़ी नंबर 28 से 31 में भी योगियों सिद्धों के प्रति ही वर्णन किया गया है जिनमें बाहर के पाखन्डों, योगियों की साधनाओं, कर्मकांडों व कुछ विश्वासों का खन्डन किया गया है ; और आध्यात्मिक तथा सदाचारक गुणों को धारण करने व प्रभु के संग प्रीति डालने का उपदेश दिया गया है।

गोरखमते में जिन योगियों के साथ गुरु जी की चर्चा हुई उन की अगवाई झगर नाथ व भंगर नाथ जोगा ने की थी। गुरु जी के विचार सुनकर बहुत से योगियों ने सिख धर्म धारण कर लिया। आस-पास के आम लोगों के मनों से भी योगियों का रिद्धियों-सिद्धियों के वर व श्रापों का भय जाता रहा। आखिर यहाँ योग मत की इति हो गया और यह स्थान सिख धर्म का केन्द्र बन गया और इसका नाम भी गोरख मते से बदल कर नानकमता पड़ गया।

अयोध्या में

नानकमते से चलकर, अलग-अलग गांवों तथा नगरों में सच्चे धर्म का प्रचार करते हुए, गुरुजी दीवाली के समय अयोध्या जा पहुंचे। यह श्री रामचन्द्र जी की जन्म भूमि है और उनके वनवास से वापिस आने के उपलक्ष्य में यहां विशेष धार्मिक मेला लगता है। इसी दिन लोग धन दौलत की प्राप्ति की खातिर 'लक्ष्मी' देवी की पूजा भी करते हैं।

अयोध्या में ही गुरु जी को बहुत भारी गिनती में बैरागी साधु मिले। ये साधु रामानन्द जी के चेले थे और मुक्ति हेतु निम्नांकित पांच कर्म करते थे :

(1) द्वारिका (कृष्ण जी की जन्मभूमि) की यात्रा ;

(2) विष्णु-चिन्हों—शंख, चक्र आदि का शरीर पर छिदवाना ;

(3) गोपी चंदन का तिलक लगाना (द्वारिका के पास एक तालाब है, जहां कृष्ण जी के देहांत के पश्चात, गोपियों ने विरह के दुख में प्राण त्याग दिए थे। उस तालाब की मिट्टी को गोपी चंदन कहते हैं।

(4) श्री कृष्ण जी तथा रामचन्द्र जी की मूर्तियों की पूजा।

(5) तुलसी माला को धारण करना।

गुरुदेव ने बैरागियों तथा अन्य लोगों को समझाया कि देवी-देवताओं की पूजा व मूर्तियों की पूजा निश्फल कर्म हैं। इनके स्थान पर एक अकालपुरख की स्तुति करनी चाहिए, वह अपने सेवकों की सभी मुरादों की पूर्ति करता है।

प्रयाग में

प्रयाग को इलाहबाद भी कहते हैं। यह हिन्दुओं का एक प्रसिद्ध तीर्थ है। यहां गंगा तथा जमुना नदियों का मेल होता है।

परतु लोगों का विश्वास था कि "सरस्वती" नदी भी गुप्त तौर पर इनमें मिलती है। इसलिए नदियों के मेल वाले स्थान को त्रिवेणी संगम कहा जाता है। यहां स्नान करने को विशष महत्व दिया जाता है। यहां माघ मास की सक्रांति का एक बड़ा मेला लगता है। गुरू जी इस मेले के समय यहां पर पहुँचे और लोगों को समझाया कि तीर्थ स्नान का, मन को पवित्रता तथा प्रभु की भक्ति के साथ कोई संबध नहीं है। शरीर धोने से तो शरीर को ही मैल उतरती है; मन की मैल नहीं। मन की मैल प्रभु का गुण गायन करने से ही उतरती है। सच्चा तीर्थ तो गुरू ही है, जिसकी शिक्षा रूपी नदी में स्नान करके जीव मुक्ति प्राप्त कर सकता है। आपके उपदेश हैं :

तीरथि नावण जाउ, तीरथु नामु है ॥
तीरथु सबद बीचारु, अंतरि गिआनु है ॥

(धनासरी महला १, पृ. 687)

—तीरथि नाइि, कहां सुचि सैलु ॥
मन कउ विआपै, हउमै मैलु ॥

(भैरउ महला ५, पृ. 1149)

—संत जना मिलु संगती, गुरमुखि तीरथु होइि ॥
अठसठि तीरथ मजना, गुर दरसु परापति होइि ॥

(सोरठि महला १, पृ. 597)

—अंमृत नीरु गिआनि मन मजनु, अठसठि तीरथ संग गहे।
गुर उपदेसि जवाहर माणक, सेवे सिख सो खोजि लहै ।१।
गुर समानि तीरथु नही कोइि ॥
सरु संतोखु तासु गुर होइि ।१। रहाउ ।
गुर दरिआउ, सदा जलु निरमलु, मिलिआ दुरमति मैल हरै ।
सतिगुरि पाईऐ पूरा नावणु, पसू परेतहु देव करै ॥

(प्रभाती रागु महला १, पृ. 1328)

प्रयाग में ही एक बरगद का वृक्ष था, जिसके बारे में पाण्डे कहा करते थे कि जो प्राणी अपना सब कुछ दान करने के पश्चात इस बरगद के वृक्ष के ऊपर से कूद कर मर जाये, उसको मुक्ति हो जाती है। इसे "अक्षयवट" (नाश-रहित बरगद का वृक्ष) कहा जाता था। (जहांगीर बादशाह ने अपने राज्य काल में इसे कटवा दिया था) गुरू जी ने लोगों को समझाया कि यह कुकर्म तो पाण्डों ने अपनी पेट पूजा के लिए बनाया हुआ है, ताकि लोग मुक्ति के बहाने आत्म-हत्या कर लें और मरने से पहले अपना सारा धन माल उनके

(पाण्डों के) हवाले कर जायें ।

बनारस में

बनारस में गुरू जी शिवरात्रि के मेले के अवसर पर पहुँचे। इसे वाराणसी तथा काशी भी कहा जाता है। यह हिन्दुओं की सात पवित्र पुरियों में से एक है और संस्कृत विद्या का तथा हिन्दू धर्म का एक बहुत बड़ा केन्द्र है।

फागुन की 14 की रात को "शिवरात्रि" कहा जाता है। पुराणों के अनुसार यह शिवजी तथा दुर्गा जी के मिलाप की खुशियों भरी रात है। जोगी लोग तथा अन्य हिन्दू इस समय यहाँ पहुँच कर शिव तथा दुर्गा की पूजा करते थे। गुरू जी ने उन्हें एकीश्वर—अकालपुरख की पूजा दृढ़ करवाई।

पंडितों ने यह भी प्रसिद्ध किया हुआ था कि जो व्यक्ति काशी में प्राण त्यागे उसकी मुक्ति हो जाती है और जो मनुष्य मगहर नाम के नगर में प्राण त्यागता है वह गधे की योनि में पैदा होता है। काशी में ही पंडितों ने एक "करवत् (आरा) रखा हुआ था, जिस के बारे में यह बात फैलाई हुई थी कि पंडितों को दान पुन्य करने के पश्चात जो प्राणी इस आरे से शरीर चिरवा लेगा वह सीधा 'शिव पुरी' में जायेगा। सतिगुरू साहिबान ने लोगों को पंडितों की इन चालों से अवगत करवाया और बताया कि किसी स्थान विशेष पर मरने से मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती, या स्वर्ग या नर्क की प्राप्ति नहीं होती है। मुक्ति तो प्रभु से प्रीति डालकर, अपना आचरण ऊंचा व निर्मल बनाकर, गुणों को अपना कर तथा अवगुणों का त्याग करके ही हो सकती है। ऐसे व्यक्ति जहां अपना जीवन सफल कर लेते हैं, वहीं उनके अनेकों साथियों का जीवन भी सफल हो जाता है। यथा :

> **जिनी नामु धिआइआ, गए मसकति घालि ।**
> **नानक ते मुख उजले, केती छुटी नालि ।।** (जपुजी-8)

जब पंडितों ने देखा कि गुरु जी ने उनके झूठ तथा कलुषित प्रचार का पर्दा-फाश कर दिया है—लोगों को दान-पुण्य के चक्करों में से निकाल दिया है और मुक्ति प्राप्त का सरल मार्ग समझा दिया है, तो वे गुरूजी के साथ बहुत ईर्ष्या करने लग पड़े। वे कहने लगे कि गुरू नानक तो एक नकली साधु है ; न तो यह तुलसी की पूजा करता है, न तिलक लगाता है, न माला पहनता है, और न ही इसके पास सालिग्राम है। इन पंडितों की अगवाई चतुरदास नाम का ब्राह्मण कर

रहा था। उसने गुरू जी के साथ काफी लंबी बहस भी की। गुरू जी ने पंडितों को समझाया कि फोकट कर्म-कांडों में समय नष्ट करने के स्थान पर प्रभु की स्तुति करना, व उसकी शिक्षाओं पर अमल करना चाहिए और आचरण को ऊंचा व निर्मल बनाना चाहिए। ये कर्म-कांड तो बंजर भूमि को सींचने के समान है। जैसे भूमि को सींचने से उसमें फसल न तो उग सकती है और न बढ़ फूल सकती है, उसी प्रकार कर्म-कांड करने से मनुष्य को मुक्ति नहीं हो सकती, बल्कि उसका जीवन व्यर्थ हो चला जाता है।

> सालग्राम बिप पूजि मनावहु, सुक्रितु तुलसी माला ।
> राम नामु जपि बेड़ा बांधहु, दइआ करहु दइआला ।
> काहे कलरा सिंचहु, जनमु गवावहु ।
> काची ढहगि दिवाल, काहे गचु लावहु ।
>
> (बसंतु हिंडोल, महला १ पृ. 1171)

बनारस में ही गुरू जी ने भक्त रविदास जी के अनुयाइयों से उनकी (भक्त कबीर जी, भक्त रविदास जी) बाणी तथा रामानंद जी का एक शब्द प्राप्त किया। प्रिंसोपल साहिब सिंघ जी के अनुसार गुरू जी ने भक्त सैण जी तथा भक्त पीपा जी का एक-एक शब्द भी बनारस से हो प्राप्त किया था।

गया में

गया, बिहार प्रांत में फलगू नदी के किनारे पर स्थित है। ब्राहमणों के सिखाये हुए लोग यहाँ अपने पित्तरों (मर चुके पिता-पितामा) की गति हेतु जौ के आटे के पेड़े—पिण्ड दान करने के लिए आया करते थे। पिण्ड दान करने के साथ-साथ पंडितों को और भी बहुत सा दान करना पड़ता था।

सतगुरू जी और भाई मर्दाना जी 1509 की बैसाखी को यहाँ पर पहुँचे। आपने लोगों को समझाया कि मृत्यु के पश्चात की गयी "किरिया" आदि का मर चुके प्राणी की आत्मा को कोई लाभ नहीं होता। दीवा-वटी, अर्द्ध-मार्ग करना, घड़ा तोड़ना, कपोल क्रिया करना, पुराणों आदि का पाठ करवाना, श्राद्धों के समय पंडितों को भोजन करवाना, अन्न-वस्त्र दान करने आदि सभी निष्फल कर्म हैं। परमात्मा का नाम ही असली दोवा है, नाम मनुष्य को पापों से हटा कर सदाचारी बना देता है। इस संबंध में गुरू जी ने आसा राग में नीचे लिखे शब्द का उच्चारण किया :

दीवा मेरा ऐकु नामु, दुखु, विचि पाइआ तेलु ।।
उनि चानणि ओहु सोखिआ, चूका जम सिउ मेलु ।।
लोका मत को फकड़ि पाइ ।।
लख मड़िआ करि ऐकठे, एक रती ले भाहि ।।रहाउ ।।
पिंडु पतलि मेरी केसउ, किरिआ सचु नामु करतार ।।
अैथै ओथै आगै पाछै, एहु मेरा आधारु ।।2।।
गंग बनारसि सिफति तुमारी, नावै आतमराउ ।।
सचा नावणु त थीअै, जां अहिनिसि लागै भाउ ।।3।।
इक लोकी होरु छमिछरी, ब्राहमणु वटि पिंडु खाहि ।।
नानक पिंडु बखसीस का, कबहूँ निखूटसि नाहि ।।4।।

(आसा घर 3, महला १, पृ. 358)

(पकड़—मखौल । मड़िआ—(लकड़ियों के) ढेर । छमिछरी—पितृलोक के वासी, पित्तर) ।

गोहाटी में

बिहार प्रांत से सतगुरू जी आसाम देश में दाखिल हुए । तब उस क्षेत्र को कामरूप के नाम से जाना जाता था । गोहाटी के समीप कामख्या देवी का मदिर है । कामख्या स्त्री के गुप्त अंग को कहा जाता है । इस मदिर में सती देवी (शिव की पत्नि) के गुप्त अंग (योनि) की पूजा की जाती थी । इसलिए इस स्थान को "योनिपीठ" भी कहा जाता है । यह मदिर वाम-मार्गियों का है । यह मत, तंत्र शास्त्र के अनुसार शिव-उपासकों द्वारा चलाया हुआ है । ये लोग धम तथा आचरण से गिरे हुए कर्मों को 'धर्म का आवश्यक अंग' समझते थे ।

वाम मार्ग में मास, मैथन, मदिरा, माया तथा मुद्रा (भुने हुए चिड़वे व चनों तथा गेहूँ का बेरड़ा का सेवन आवश्यक अंग माना गया है । इन की धार्मिक बोली भी अपनी भिन्न प्रकार की थी । ये मास को "सुध", मदिरा (शराब) का "तीरथ", शराब के प्याले को "पदम' कलाल को "दीक्षित", वेश्यागामी को "प्रयागगामी" तथा व्याभिचारी को "योगी" कहते थे । इन वाममार्गियों के मतानुसार मास, शराब तथा दूसरे नशों का सेवन तथा व्याभिचार (भोग-विलास) ही मुक्ति का साधन हैं । तन्त्र शास्त्र में लिखा हुआ है ;

मदयं मासं तथा मतसयो, मुद्रा मैथुनेव च ।।
पंच तत्व मिदं प्रोकंत, देव ! निरबाण हेतवे ।।

ये अपनी 'संगत' को 'भैरवी चक्र' कहते थे और इन भैरवी चक्रों में नशों का सेवन तथा खुले तौर पर व्याभिचार किया जाता था।

गुरु जी ने इन लोगों को नशों के सेवन तथा बुरे तथा आचरण हीन कार्य करने से विवर्जित किया। आपने कहा कि 'कुकर्मों' को धर्म का नाम देने से वे 'सदकर्म' (अच्छे काम) नहीं बन जाते।

दीवाली वाम-मार्गियों का शुभ दिन होता है। इस दिन को ये बड़े उत्साह से एक 'पर्व' की भांति मनाते हैं। इसी अवसर पर ही गुरु जी कामख्या देवी के मंदिर में आये थे।

ढाका में

आसाम के भिन्न-भिन्न नगरों में प्रचार करने के पश्चात सत-गुरु जी बंगाल में दाखिल हुए। वहां दुर्गा देवी की पूजा बड़े जोरों पर हुआ करती थी। दुर्गा शिव की पत्नि है और इसके कई नाम हैं—उमा, शिवा, पार्वती, सती, दुर्गा तथा काली आदि।

ढाका में दुर्गा का ढाकेश्वरी नाम का प्रसिद्ध मदिर है। गुरु नानक देव जी दुर्गा पूजा के दिनों में यहां पहुँचे थे और उन्होंने देवो देवताओं की पूजा, सांढ व अन्य पशुओं की बलि देने के विरुद्ध प्रचार किया। यहीं से सतगुरु साहिबान ने भक्त जै देव जी के दो शब्द प्राप्त किए। आपने बंगाल के गांवों, नगरों व शहरों में घूम-घूम कर अपने मत का प्रचार किया। मेदनीपुर में सतगुरु साहिबान की याद में एक गुरुद्वारा भी मौजूद है।

जगन्ननाथपुरी में

बंगाल से सतगुरु जी उड़ीसा में पहुँचे। वहां के नगर 'पुरी' में जगन्ननाथ के मंदिर में आरती उतारने की साखी इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है।

इस मंदिर में जगन्नाथ (कृष्ण जी) की एक मूर्ति है। हर साल आषाढ़ सुदी 2 को इस मूर्ति का और बलराम के भद्र की मूर्तियों का जलूस निकाला जाता है। ये मूर्तियां बड़े-बड़े रथों में सजाई जाती हैं। इसे रथ यात्रा भी कहते हैं। इस यात्रा के समय ही सतगुरु जी पुरी में पहुँचे थे। गुरु जी ने लोगों को समझाया कि कोई देवता 'जगन्ननाथ' (दुनिया का मालिक) नहीं है, जगत का नाथ तो प्रभु अकालपुरख स्वयं ही है।

लोग सतगुरू जी को जगन्ननाथ के मंदिर में ले गए और उन्हें जगन्ननाथ की मूर्ति की आरती में शामिल होने के लिए कहा। सतगुरू साहिब ने आरती में शामिल होने से न कर दी और कहा कि उनका जगन्ननाथ वाहिगुरू है, जो रूप रंग से न्यारा है। उसका कोई शरीर नहीं है। वह तो सभी जीवों में और हर स्थान पर व्यापक है। उसकी आरती थाल में हीरे मोती, फूल सजा कर, धूप जला कर और दीवे सजा कर नहीं उतारी जा सकती। उसकी आरती तो उसकी बनाई हुई कुदरत स्वयं उतार रही है, जिसमें आकाश-थाल, सूर्य चांद-दीवे, तारे-मोतियों की सेवा निभा रहे हैं। धूप तथा फूलों के स्थान पर सारी वनस्पति सुगंधी फैला रही है। दिखावे की आरती द्वारा प्रभु प्रसन्न नहीं होता, प्रभु के आदेश को समझना और उसके आदेश तथा रज़ा मे रहना ही सच्ची आरती है। आरती का खंडन करने के लिए सतिगुरू जी ने वहां पर एक शब्द का उच्चारण किया जो 'धनासरी राग' में है। शब्द की प्रारंभिक पंक्ति इस प्रकार है :

गगन मै थालु, रवि चंदु दीपक बने, तारिका मंडल जनक मोती।

पुरी में ही सतिगुरु साहिबान ने एक और पाखण्डी पांडे का पाज उघाड़ा। उस पाण्डे का नाम था 'कलियुग'। वह अपने श्रद्धालुओं में घिरा हुआ, समाधी लगा कर बैठा हुआ था, जिसे कि वह 'पदम आसन' बता रहा था। उसने अपने सामने एक करवा (बर्तन) रखा हुआ था, जिसमें श्रद्धालु लोग भेंट स्वरुप पैसे डालते थे। कलियुग कभी आंखें खोल लेता और कभी बंद कर लेता। वह बता रहा था कि उसे बैकुंठ में बैठे विष्णु भगवान के दर्शन हो रहे हैं। गुरु साहिबान ने उसका करवा (बर्तन) उठा कर उसके पीछे रख दिया। जब उसने आंखें खोलीं तो करवा सामने नहीं था। बहुत परेशान हुआ और कहने लगा कि मेरा बर्तन कहाँ है ? गुरु जी ने उसको ही पूछ लिया कि तुझे तो बैकुण्ठ के हालात दिखाई दे रहे थे, अब तुझे बर्तन का भी पता नहीं लग रहा ? इस घटना का गुरबाणी में इस प्रकार वर्णन किया गया है :

अखी त मीटहि, नाक पकड़हि, ठगण कउ संसारु ।रहाउ।
आँट सेती नाकु पकड़हि, सूझते तिनि लोअ ॥
मगर पाछै कछु न सूझै, इहु पदमु अलोअ ॥

(धनासरी महला १, पृष्ठ 663)

इस बात से सब को पता लग गया कि वह पांडा केवल पैसे

बटोरने की खातिर ही समाधी लगाये बैठा था । सतगुरु साहिबान ने लोगों को समझाया कि ऐसे पाखण्डी, निकम्मे तथा मांग कर खाने वाले साधुओं का, तिल भर भी विश्वास नहीं करना चाहिए । ये तो धर्म के नाम पर ठगी कर रहे हैं । भगवे वेश, पाखण्डों, कर्म कांडों, समाधियों का नाम धर्म नहीं है, बल्कि धर्म तो एक जीवन मार्ग है, जीवन पद्धति है । प्रभु का नाम सुमिरन तथा शुभ कर्म करने, यही सच्चा धर्म है ।

कौडा भील

पुरी से चल कर गुरु नानक साहिब भीलों के क्षेत्र (उड़ीसा से रामेश्वरम तक का, पूर्वी समुद्र के साथ लगता क्षेत्र) में, जिसे द्रविड़ कहा जाता है, आ पहुँचे । इस क्षेत्र के लोगों को भील कहा जाता था । कहा जाता है कि भील वे लोग थे जो आर्य लोगों के अत्याचारों के सताए हुए, मैदानी इलाके को छोड़ कर, दक्षिणी पहाड़ियों में बसने पर मजबूर हुए थे । इसी कारण ही ये मैदानों में बसने वालों के साथ शत्रुता की भावना रखते थे । यदि कोई भूला भटका शहरी इनके हाथ आ जाता तो ये उसको मार कर उसका मास खा जाते थे । इस क्षेत्र में भाई मर्दाना जी गुरु साहिबान से बिछड़ जाने के कारण, कौडा नाम के भील के हाथ पड़ गये । वह भाई मर्दाना जी को मारने की तैयारी कर रहा था कि सतगुरु जी भी मर्दाना जी को खोज में वहां आ पहुंचे । गुरु साहिबान के दर्शन कर के, उनके चेहरे के जलाल को देख कर, कौडे का मन बदल गया । उस ने भाई मर्दाना जी को छोड़ दिया और गुरु साहिबान के चरणों में गिर पड़ा ।

पालीपुर में (पोलीपोर्ट)

पालीपुर में योगियों का मठ था । सतिगुरु साहिबान ने योगियों को रिद्धियों-सिद्धियों की राह छोड कर प्रभु की स्तुति करने का उपदेश दिया । यहां सतगुरू जी के आने की याद में 'तिलगंजी' नाम का स्थान बना हुआ है । कहा जाता है कि योगियों ने सतगुरू साहिबान को तिलों का एक दाना दे कर कहा था कि उसे सभी योगियों में बांट दो । गुरू जी ने वह दाना पानी में घोंट कर सब को बांट दिया था ।

फिर गुरू जी तिरूपति, कांजीवरम, पांडेचेरी से होते हुए तंजावर पहुँचे । यहां पर एक मंदिर में विष्णु की 18 गज ऊंची मूर्ति थी, जिसे पदनाभि कहते थे । गुरू जी ने लोगों को मूर्ति पूजा की ओर से हटा कर प्रमात्मा की भक्ति की ओर प्रेरित किया ।

रामेश्वरम में

पामन द्वीप में रामेश्वरम नाम का एक प्रसिद्ध मंदिर है। नगर का नाम भी रामेश्वर ही है। हिन्दू लोगों का विश्वास है कि यहां पर श्री राम चन्द्र जी ने पुल बांधते समय शिवलिंग स्थापित किया था। गुरु जी ने लोगों को शिवलिंग तथा राम कृष्ण आदि देवताओं की पूजा से वर्जित किया और एक प्रभु के साथ जोड़ा।

संगलाद्वीप में

संगलाद्वीप को आजकल श्रीलंका कहा जाता है। सतिगुरू जी इस टापू के शहर मटीआ कलम (मटाले) में गये। यहां का राजा शिवनाभ, गुरसिख व्यापारी भाई मनमुख की संगत के कारण, गुरु नानक जी का श्रद्धालु बन चुका था और गुरु साहिबान के दर्शनों के लिए तीव्र लालसा रखता था। उसकी इस इच्छा को जान कर, कई ठग साधु अपने आपको 'गुरू नानक' बता कर मान सम्मान तथा धन-माल की प्राप्ति करने के यत्न करते रहते थे। जब गुरू जी वहां पहुँचे तो शिवनाभ ने 'परीक्षा' करने के लिए उनके पास रूपवान स्त्रियों को भेजा। गुरू साहिब स्वयं तो प्रभु भक्ति में विलीन रहे, परंतु उन स्त्रियों को कहा :

गाछहु पुत्री राज कुआरि । नामु भणहु सचु दोतु सवारि ।
प्रिउ सेवहु प्रभ प्रेम अधारि । गुर सबदी बिखु तिआसु निवारि ।१।

बसंत महला १, पृ. 1187)

राजा को जब निश्चय हो गया कि सचमुच सतगुरू नानक ही आये हैं, तो वह सेवा में आ उपस्थित हुआ। उसने सिखी धारण की। सतगुरू जी 'कंडो' में गये, जहां स्वामी कारतिकेय के श्रद्धालुओं ने आकर इकट्ठा होना था। लंका के 1 रजवाड़े भी पहुँचे जो आपस में लड़ते रहते थे। गुरू जी ने कीर्तन आरंभ कर दिया। बाद में रजवाड़ों को मिलजुलकर रहने को प्रेरणा दी। उन्होंने गुरू जी के वचनों को मानकर केन्द्रीय राजा 'शिवनाभ' की सरदारी स्वीकार कर ली।

बम्बई प्रांत की ओर

संगलाद्वीप से जहाज द्वारा गुरू जी कोचीन पहुँचे। वहां पर लोगों का सालिग्राम को पूजा से हटाया। फिर पालघाट में शिव के मंदिर 'जनार्दन' में गये। नीलगिरी पर्वत के क्षेत्र के लोगों को पित्तरों की खातिर भैंसें मार कर दान करने से वर्जित किया। फिर पांढरपुर

से होकर बरसी नामक स्थान पर पहुँचे। वहां से आपने भक्त त्रिलोचन जी के दो शब्द प्राप्त किये। पूने के समीप 'भीम शंकर' नाम का जोति लिंग मंदिर है। वहां पर लोगों को शिवलिंग की पूजा से वर्जित किया। फिर जिला थाना में अमरनाथ के शिव मंदिर में गये। वहां पंचवटी (जिला नासिक) में गये, यहाँ त्रयंबक नाम का शिवलिंग मंदिर है। औरंगाबाद के शिवलिंग मंदिर में तथा उज्जैन के महाँकाल के मंदिर में भी गुरू नानक साहिब गये। इन स्थानों पर गुरू साहिबान ने शिवलिंग की घृणायोग्य पूजा से लोगों को वर्जित किया और एक प्रभु के संग जोड़ा। ओंकार में आपने जो उपदेश दिये, वे आपको बाणा 'ओंकार' में दर्ज हैं।

उज्जैन से बड़ौदा होते हुए गुरू जी पालीटाणा पहुँचे। यहाँ जैनमत का प्रसिद्ध मंदिर है। यहां अनभी नाम के जैनी साधु के साथ आप की चर्चा हुई। जैनियों के कुचील रहने, गंद-मंद खाने तथा जीव हिंसा के वहम को सतिगुरु साहिबान ने निंदा की। अनभी को समझाया कि सच्चे गुरु की शिक्षा की प्राप्ति से ही जीवन सफल हो सकता है न कि जैनियों के निरर्थक विश्वासों को मानने से।

पालीटाणे से होते हुए गुरु साहिबान सोमनाथ के प्रसिद्ध शिवलिंग मंदिर में पहुँचे। इस मंदिर को 1024 ई. में महमूद गज़नवी ने लूटा था। यहां से उसने सैंकड़ों मन सोना, हीरे, जवाहारात लूटमार द्वारा प्राप्त किये थे। हीरों से जड़ी हुई शिव की 5 गज लंबी मूर्ति के चार टुकड़े करके, दो गज़नी तथा दो मक्का भिजवाये थे। यहाँ से गुरु जी, जूनागढ़ के रास्ते से होते हुए कृष्ण जी की नगरी द्वारका पहुँचे। द्वारिका से तीन कोस पर नागेश्वर का शिवलिंग मंदिर है। यहाँ द्वारिका में ही कृष्ण जी का रणछोड़ नाम का मूर्ति है, जो कृष्ण जी के जरासंध तथा कालयमन से हार कर रणभूमि से भगौड़ा होने की याद में स्थापित की गयी है। यहाँ गुरु जी ने लोगों को जहां शिवलिंग पूजा मूर्ति पूजा, देवी देवताओं की पूजा छोड़ने को कहा वहां निडर होकर प्रभु भक्ति करने का उपदेश भी दिया। गुरू जी ने समझाया कि जो खुद डर कर युद्ध का मैदान छोड़ कर भगौड़ा हो गया हो, वह अपने सेवकों की रक्षा नहीं कर सकता। रणछोड़ मूर्ति की पूजा तो श्रद्धालुओं को डरपोक तथा कायर ही बना सकती है।

द्वारिका से गुरु जी तथा भाई मर्दाना जी पंजाब को वापिस आ गये।

गुजरात प्रदेश की रियासत कच्छ में वाम-मार्गियों का बहुत

प्रभाव था। वे लोग शराब तथा अन्य नशों के सेवन तथा व्यभिचार करने (परस्त्री तथा परपुरुष से गुप्त संबध रखना) को ही धर्म समझ रहे थे उनके समागमों—भैरवी चक्रों में, मास, शराब तथा अन्य नशों का सेवन तथा व्यभिचार, बिना किसी हिचक के किया जाता था। सतगुरु साहिबान ने उन्हें ऐसे कुकर्म भरा जीवन त्याग देने को प्रेरणा दी।

राजस्थान में

आबू पर्वत पर पहुँच कर गुरु जी ने जैनी साधुओं में गुरमत का प्रचार किया। वहां से प्रचार हेतु उदैपुर, नाथ द्वारा, चित्तौड़ आदि स्थानों पर होते हुए अजमेर पहुंचे। यहाँ लोगों को मुसलमान पीर फकीरों के मकबरों की पूजा से रोका। पुष्कर तीर्थ पर जाकर लोगों को पुन्य दान तथा तीर्थ स्नान आदि कर्म कांडों से हटाया। आपने कहा, 'सतिगुरु ही सच्चा तीर्थ है। उसकी शिक्षा रुपी नदी मे स्नान करके ही जीव अपना लोक तथा परलोक सवार सकते हैं।''

पुष्कर से आगरा होते हुए आप मथुरा पहुँचे। लोग कृष्ण जी का जन्मोत्सव 'जन्माष्टमी' मनाने की तैयारी कर रहे थे। गुरु जी ने समझाया कि परमात्मा तो अजूनी है, वह जन्म-मरण के चक्कर में में नहीं आता है। इसलिए कोई 'देवता' परमात्मा नहीं हो सकता। जब प्रभु पैदा ही नहीं होता तो उसका जन्म दिन मनाना निरर्थक है।

मथुरा के ब्राह्मणों तथा लालची पांडो के नीच आचरण को देखकर भाई मर्दाना जी ने गुरु जी से पूछा—'लोक लुच्चे-लवार, चोर यार बहुत हन, तीर्थ उते इहो जिहे तां नहीं होणे चाहीदे।' (त्वारीख गुरू खालसा नबर 1, पृष्ठ 215)। इसके उत्तर में पंडित बोल पड़े कि अब कलयुग आ गया है। उसने तीर्थों, देव मंदिरों, पुरियों में निवास करके लोगों के मन भ्रष्ट कर दिये हैं, गुरू जी ने पंडितों को कहा, ''अपने कुकर्मों को कलयुग के माथे मढ़कर, तुम लोगों की दृष्टि में तो चाहे स्वीकार हो जाओ परंतु प्रभु तुम्हें क्षमा नहीं करेगा। उसने तो कर्मों पर निर्णय करना है। समय या युग का पाप पुण्य स कोई सबंध नहीं होता है। जिस प्रकार के सूर्य, चाँद, तारे, धरती, पवन, पानी सतयुग में थे, वैसे ही अब हैं तो फिर लोगों के मन कैसे भ्रष्ट हो गये।' इसके बारे में आपका शब्द है;

> सोई चंदु चढ़हि से तारे, सोई दिनीअरु तपत रहै।
> सा धरती सो पउण झुलारे, जुग जीअ खेले थाव कैसे ॥
> जीवन तलब निवारि ॥

होवै परवाणा करहि धिगाणा, कलि लखण वीचारि ॥रहाउ॥
(रामकली महला १, असटपदीआं पृ. ९02)

दिल्ली में

मथुरा की ओर से प्रचार करते हुए गुरु साहिबान दिल्ली आ पहुंचे। यहां जमुना नदी के किनारे मजनू भगत से मिले। गुरद्वारा मजनू का टोला आपके दिल्ली आने की याद में स्थापित किया गया है। दिल्ली से चलकर आप पानीपत पहुंचे। यहां शेख ताहर (शेख टटोहरी) से आपकी चर्चा हुई। शेख तथा उसके मुरीदों को मकबरों की पूजा से आपने रोका। यहाँ से चलकर करनाल पहुंचे जहाँ आप के ठहरने की याद में महला ठठरां में एक गुरद्वारा है। थानेसर से 16 मील की दूरी पर जाकर आपने लोगों को पित्तरों के नाम पर पिण्ड भरवाने के फोके कम कांड से रोका।

कुरुक्षेत्र में

पहाए से दूसरे दिन ही गुरू साहिबान मर्दाना जी सहित कुरुक्षेत्र पहुँच गये। अमावस का दिन था और सूर्य ग्रहण लगना था। शास्त्रों की मर्यादा के अनुसार हिन्दुओं के लिए यह जरूरी था कि वे सूर्य ग्रहण के समय तीर्थों पर जाकर स्नान करें और पंडितों को अन्न धन दान करें। यह भी कहा जाता था कि ग्रहण सूर्य देवता पर किसी आपत्ति का समय है, इसलिए कुछ खाना पीना नहीं चाहिये ताकि सूर्य देवता की क्रोपी से बचा जा सके। गुरु जी ने इस अंधविश्वास का खोखलापन लोगों को समझाया और लोगों को कहा कि दिया हुआ दान निकम्मे ब्राहमणों ने ही हड़प कर जाना है। इसलिए दान देने के स्थान पर गरीबों तथा जरूरतमंदों की सेवा करनी चाहिए।

कुरुक्षेत्र से गुरु जी सरसा पहुँचे। वहां पीरों के मेल जोल के कारण अनेकों हिन्दू, मुसलमान बन चुके थे। ये पीर, लोगों को रोजे (व्रत) रखने की प्रेरणा देते थे। वे कहते थे कि इस प्रकार स्वर्ग में पहुँचा जा सकता है। गुरू साहिबान ने लोगों को समझाया कि मानव जीवन का ध्येय प्रभु से प्रीति डालना है, स्वर्गों की प्राप्ति करना नहीं है। प्रभु प्रीति के लिए व्रत तथा रोजों की कोई आवश्यकता नहीं है।

सुलतानपुर में

सरसा से चलकर गुरू जी सुलतानपुर पहुँचे। भाइया जै राम जी, बेबे नानकी जी, नवाब दौलत खान तथा अन्य सतसंगी, गुरू साहिबान के दर्शन करके गदगद हो गये।

सुलतानपुर से आप तलवंडी पहुँचे। वृद्ध माता-पिता को आपके वापिस आने की अपार प्रसन्नता हुई। भाई मर्दाना जी अपने परिवार-जनों को जाकर मिले।

परिवार के संग मिलाप

सतगुरू साहिबान का परिवार पखोके रंधावे में था। तलवंडी से भाई मर्दाना जी को साथ लेकर सतगुर जी परिवार के पास पहुँचे। पत्नी तथा बच्चों के लिए यह अत्यंत प्रसन्नता का अवसर था। पूरे सवा आठ वर्ष के पश्चात जो मिलाप हुआ था।

करतारपुर बसाया

गुरू नानक पातशाह हज़ारों मील दूर तक गुरमत का प्रचार करके आये थे। अब वे एक प्रचार केंद्र स्थापित करना चाहते थे जहाँ पर सिख सिद्धांतो के प्रचार के साथ-साथ व्यावहारिक जीवन का प्रशिक्षण भी दिया जा सके। आपने पखोके रंधावे के चौधरी अजिते के साथ इस बारे में बातचीत की। उसने इस स्थान के लिए अपनी जमीन दे दी। गुरू जी ने जनवरी, 1516 में इस ज़मीन पर बसाये जाने वाले नगर की नींव रखी, जिसका नाम सतगुरू साहिबान ने स्वयं ही 'करतारपुर' रखा।

यहीं पर गुरू साहिबान ने कलानौर के हाकिम दुनी चंद जो करोड़ी मल के नाम से प्रसिद्ध था, को गुरमत के संग जोड़ा। पहले तो वह सतगुरू जी से नफरत करता था और कहता था कि गुरू जी सदियों से चली आ रही रीतियां तथा धर्म शास्त्रों की शिक्षाओं के स्थान पर नवीन विचारों तथा जीवन पद्धति का प्रचार कर रहे हैं, इसलिए मैं उनके दर्शन भी नही करूंगा। लोगों के समझाने पर आखिर वह गुरू साहिबान के दर्शन करने के लिए आ ही गया। वह गुरू साहिबान से इतना प्रभावित हुआ कि नवीन नगर के निर्माण में तन, मन, धन से सेवा करने लग पड़ा।

जब नगर बस गया तो सतगुरू जी अपने माता पिता को यहां पर ले आये। भाई मर्दाना जी का परिवार भी आ गया। नगर में धर्मशाला (गुरद्वारा) बनाई गयी, जहां पर सुबह शाम कीर्तन होता था और गुरू साहिबान अपने विचारों का प्रचार करते थे। लगभग पौने दो साल, दोनों समय सतसंग का कार्यक्रम चलता रहा। सितम्बर, 1517 में सतगुरू जी, मर्दाना जी सहित दूसरे प्रचारक दौरे (उदासी) पर निकल पड़े।

8

दूसरा प्रचारक दौरा

(सितम्बर, 1517 से दिसम्बर, 1518)

प्रथम प्रचारक दौरे की भांति दूसरा प्रचारक दौरा भी विशेषतौर से हिन्दू धर्म स्थानों व सिद्ध-योगियों के डेरों की ओर था। इस उदासी (प्रचारक दौरे) में भी गुरु जी ने लोगों को देवी देवताओं की पूजा, मूर्तियों की पूजा, शिवलिंग की पूजा, दिखावे के निरर्थक धार्मिक पाखंड-भेष के चिन्हों आदि का त्याग करने, एकीश्वर की आराधना करने तथा अपने तथा अपने आचरण को ऊचा तथा निर्मल रखने की

प्रेरणा दी। मनुष्यों को आपसी प्रेम प्यार का उपदेश दिया और वरण-आश्रमी व्यवस्था के द्वारा डाले गये भेद-भाव को त्यागने के लिए कहा, जो कि समाज के एक बहुत बड़े हिस्से को 'शूद्र' करार करके उसक शोषण कर रही थी। घर परिवार त्याग कर, जंगल-वासी बनकर निकम्मों की भांति जीवन व्यतीत करने वालों को गृहस्थ मार्ग अपनाने की प्रेरणा दी, अपने हाथों से श्रम करके जरूरतमंदों की सहायता करने का उपदेश दिया।

इस प्रचारक दौरे के दौरान भी भाई मर्दाना जी गुरु जी के साथ थे। आप करतारपुर से चल कर, तलवंडी, कलानौर, गुरदासपुर, दसूहा आदि स्थानों पर लोगों को गुरमत से जोड़ते हुए, कांगड़ा की ओर चल पड़े। आप ज्वालामुखी पर्वत पर पहुँचे, जहां कि गैसों के जलने से लाटें निकलती रहती हैं। लोगों को 'लाटां वाली माई' के भ्रम-जाल में से निकला। यहां अरजन नाम के एक तपस्वी ने सिखी धारण की।

फिर रवालसर, ब्राहमण कोठी, मनी करणका होते हुए ब्यास नदी पार करके नालागढ़, पिंजौर, शिमला, सपाट आदि स्थानों पर गये। तप रहे जनमानस को प्रभु नाम रूपी अमृत प्रदान करके तृप्त किया। जोहड़सर जा कर लोगों को देवी देवताओं को खुश करने वाली पशुओं की बली देने वाली कुरीति से रोका।

सुमेर पर्वत पर

आप जोहड़सर से 50 मील उत्तर की ओर एक मील ऊंची चढ़ाई चढ़ गए। वहां से बदरी नाथ, सप्तश्रृंग, हेमकुंट होते हुए, उस स्थान पर पहुँच गए जिसे सुमेर पर्वत कहा जाता है। नवीन खोज के अनुसार, गढ़वाल की रियासत में रुद्रा हिमालय को ही सुमेर पर्वत कहा जाता है। यहां पहाड़ की गुफाओं में सिद्ध योगी निवास करते थे। उनके विश्वास के अनुसार ससार में रहते हुए प्रभु प्राप्ति नहीं हो सकती, इसलिए वे बस्ती से दूर पहाड़ों की कंद्राओं, चोटियों व जगलों में रहते थे। सतगुरु साहिबान व भाई मर्दाना को देख कर वे बहुत हैरान हुए, और कहने लगे :

'सिध पूछनि, सुण बालिआ, कउुण सकति तुहि इथे लिआई।'

जिस प्रकार प्रथम प्रचारक दौरे के समय गोरख-मते में योगियों के साथ चर्चा हुई थी, सुमेर पर्वत पर भी सिद्धों के साथ धार्मिक गोष्ठियां हुईं। गुरु जी ने सिद्धों को स्पष्ट कर दिया कि घर बार त्यागना, जगलों में कद मूल खाकर गुजारा करना, शरीर पर राख मलना, कानों में मुद्राएँ डालना तथा अन्य प्रकार की साधनाए साधने से प्रभु सग 'योग' (मिलाप) प्राप्त नहीं किया जा सकता। वास्तव में सिद्ध योगी वही है जो प्रभु की स्तुति करते हैं और शुभ कर्म करते हैं।

विचार चर्चा में योगी गुरू जी का सामना न कर सके। फिर उन्होंने करामात के हथियार को अपनाया, क्योंकि वे चाहते थे कि गुरू साहिबान को किसी न किसी भांति प्रभावित करके योग मत में लाया जाये। उन्होंने गुरू साहिबान को खप्पर (खोपड़ी) दिया और समीप के चश्मे से पानी लाने को कहा। गुरु जी पानी लेने गए, परंतु वहां पर पानी के स्थान पर तो हीरे-जवाहरात पड़े हुए थे। सतगुरू

जो वापिस आ गये। सिद्धो ने सोचा कि गुरू नानक हमारी करामात देखकर चकरा जायेगा और हमारी शरण में आ जायेगा। वे सतगुरू साहिबान के मुंह से अपनी प्रशंसा सुनने को उतावले थे, परंतु गुरूजी ने केवल इतना ही कहा कि उस तालाब में पानी नहीं है। सिद्धों के

यह पूछने पर कि वहां हीरे-जवाहरात नहीं देखे ? तो सतगुरु साहिबान ने उत्तर दिया कि मैं केवल पानी लेने गया था, और किसी वस्तु से मेरा क्या मतलब ? सिद्धों का करामात का हथियार भी फेल हो गया। उन्हें यह विश्वास हो गया कि इस महापुरुष पर हम कोई प्रभाव नहीं डाल सकेंगे, यह तो बल्कि हमारे जैसों को सत्य की राह दिखाने आया है।

फिर सिद्धों ने पूछा कि संसार में लोगों का क्या हाल है। सतगुरु जी ने उत्तर दिया कि हर स्थान पर असत्य का बोलबाला है, धर्म पंख लगाकर उड़ गया है और उससे भी बुरी बात यह है कि तुम्हारे जैसे लोग जिनका काम लोगों को प्रभु के संग जोड़ना है, स्वयं ही पर्वतों पर आकर बैठे हैं और रिद्धियों-सिद्धियों के चक्करों में जीवन व्यर्थ गंवा रहे हैं। इस बात का ज़िक्र भाई गुरदास जी ने अपनी पहली वार की 29 वीं पउड़ी में इस प्रकार किया है :

फिर पूछन सिध नानका, मात लोक विच किआ वरतारा।
सभ सिधीं इह बुझिआ, कलि तारन नानकु अवतारा।
बाबे कहिआ नाथ जी, सच्च चंद्रमां कूड़ु अंधारा।
कूड़ु अमावसि वरतिआ, हउ भालण चढ़िआ संसारा।
पाप गिरासी पिरथमीं, धौलु खंडा धर हेठ पुकारा।
सिद्ध छप बैठे परबतीं कउण जगत कउ पारि उतारा।
जोगी गिआन-विहूणीआ, निस दिन अंग लगाइनि छारा।
बाझु गुरू डूबा संसारा ॥

सुमेर पर्वत से गुरू जी नेपाल गए। नेपाल में काठमांडू में गंगा के किनारे पर पशुपति मंदिर के समीप डेरा डाला। सतसंग होने लगा, कीर्तन का प्रवाह चल पड़ा। वहां का राजा रणबीर सिंघ गुरू जी का सेवक बना।

सिक्कम तथा तिब्बत में : सुणकोसी तथा अरूण नदी पार कर के कंचन जंगा से होते हुए आप सिक्कम पहुंचे। आप सिक्कम की राजधानी गंगटोक में भी गए। यहां तिब्बत की ओर गए। तिब्बत के

लोग अब भी गुरु जी को 'पदम संभव' का अवतार मान कर पूजा करते हैं।

तिब्बत से लद्दाख पहुंचे। लेह में आपकी याद में गुरद्वारा कायम है। वहां से गिलगित; असकरूच होते हुए दर्रा सोसनाथा पार करके और वुलर झील के पास से जेहलम पार करके श्रीनगर पहुंचे।

कश्मीर में : पुराने समय से कश्मीर विद्वान पंडितों की रिहायश का केन्द्रीय स्थान रहा है। इस इलाके में धर्म-शास्त्रों का प्रचार होना कुदरती बात थी। इस प्रचार के प्रभाव के अधीन लोग मूर्ति पूजा, शिवलिंग पूजा, देवी-देवताओं की पूजा, वरण आश्रमी कर्म-कांडों आदि में व्यस्त थे। सतगुर साहिबान ने इनके स्थान पर प्रभु की याद में जुड़े रहने की जीवन की सही राह बतायी।

गुरु जी ने सारे कश्मीर का रटन किया, जिसके बारे में इतिहास में से नीचे लिखे स्थानों पर जाने के बारे में हवाले मिलते हैं :

श्रीनगर : यहां पर आपने हरी पर्वत पर डेरा किया और शंकराचार्य की चोटी पर भी गए।

मटन साहिब : यहां आपको एक विद्वान पंडित ब्रह्मदास के साथ ज्ञान चर्चा हुई। यह पंडित अपने साथ हमेशा पुस्तकों के गड्डे भर कर चलता था और 'ज्ञान चर्चा' में दूसरे विद्वानों को हराने में लगा रहता था। सतगुरु साहिबान ने इस घमण्डी पंडित को समझाया कि धार्मिक पुस्तकों के प्रतियोगी पाठ, अहं उत्पन्न करने वाली धर्म-चर्चा से प्रभु खुश नहीं होता, वह तो प्रेमाभक्ति का भूखा है।

ज्ञान प्राप्ति के बारे में गुरू जी ने यह उपदेश दिया :

'पढ़ि पढ़ि लदीअहि, पढ़ि पढ़ि भरीअहि साथ।
पढ़ि पढ़ि बेड़ी पाईऐ, पढ़ि पढ़ि गडीअहि खात।
पढ़ीअहि जेते बरस बरस, पढ़ीअहि जेते मास।
पढ़ीऐ जेती आरजा, पढ़ीअहि जेते सास।
नानक लेखै इक गल, होरु हउमै झखणा झाख।१।

(वार आसा, सलोक महला १, पृ. 467)

गुरु उपदेश से प्रेरणा लेकर पंडित ब्रह्मदास ने सिखी धारण की और अपने साथी कमाल को भी गुरमत का धारणी बनाया। ये दोनों ही कश्मीर में घूम-घूम कर सिखी का प्रचार करने लग गए।

अमरनाथ : गुरुजी मटन से अंश मुकाम, पहलगाम तथा अमर नाथ गये। अमर नाथ शिवजी का मंदिर है, जोकि हिमालय पर्वत की एक गुफा है। इसकी छत्त में एक छिद्र है जिसके द्वारा ऊपर से पानी रिसता रहता है और ठंड के कारण नीचे गिर कर बर्फ का ढेला बन जाता है। विष्णु के श्रद्धालु इसे शिवलिंग समझ कर इसकी पूजा करते हैं। गुरुदेव ने लोगों को इस कुकर्म से वर्जित किया।

वैष्णव देवी का मंदिर : यह मंदिर भी पहाड़ की गुफा में है, जिसका मुंह बहुत तंग है। गुफा में से पहाड़ का पानी बाहर आकर नीचे गिरता है। वहाँ पर श्रद्धालु लोग 'देवी के चरणों में' स्नान करते हैं। वे गीले कपड़े पहन कर ही मंदिर में चले जाते हैं। अन्दर रास्ते की बाईं ओर एक लंबा समतल पत्थर है जिसे श्रद्धालु 'भैरों का धड़' कहते हैं। आगे मंदिर है, जहां जोतें जगती रहती हैं। पुजारियों ने यह बात फैलाई हुई है कि यहां पर वैष्णव देवी ने भैरों (शिव) का सिर काट दिया था। धड़ तो वहीं गिर गया परंतु सिर वहां से दो मील की दूरी पर जा गिरा। लोग दूर-दूर से इस मंदिर में देवी के दर्शनों को जाते हैं और उनका विश्वास है कि देवी इस प्रकार प्रसन्न हो जाती है और भक्तों को धन माल तथा पुत्रों की कृपा प्रदान करती है, उन के दुःख दर्द दूर करती है। सतगुरु साहिबान ने लोगों को ऐसे अंध विश्वासों को त्यागने का उपदेश दिया और एक अकालपुरख की स्तुति करने तथा उसका आसरा लेने की प्रेरणा दी।

जम्मू में : देवी के मंदिर से चल कर सतगुरु जी जम्मू पहुँचे और रघुनाथ मंदिर में डेरा डाला। इस मंदिर में रामचंद्र जी तथा अन्य अनेकों देवी देवताओं की मूर्तियां हैं। गुरु जी ने लोगों को पत्थर पूजा से वर्जित किया।

सियालकोट : यहां पर हमजा गौंस नाम का मुसलमान फकीर रहता था। जब सतगुरु जी वहां पहुंचे तो वह एक गुंबज के अन्दर चालीस दिन का व्रत रखकर बैठा हुआ था। यह कहता था कि चालीस दिनों में व्रत के प्रताप से वह सारे शहर को गर्क कर देगा क्योंकि सारा शहर झूठे लोगों का है। वास्तव में बात यह है कि पीर एक हिन्दू सज्जन पर बहुत नाराज था, क्योंकि उसने इकरार के मुताबिक अपने को पीर जी की सेवा में हाजिर नहीं किया था।

गुरु जी गुंबज के समीप बैठ गये। भाई मर्दाना जी ने रबाब बजाई। दोनों ने ऊँचे स्वर में कीर्तन आरम्भ कर दिया। कीर्तन की

ओर ध्यान जाने के कारण पीर की समाधि टूट गई, वह जल्दी से बाहर निकला। और भी अनेकों लोग कीर्तन सुनने पहुँच चुके थे। सतगुर साहिबान का नूरानी चेहरा, अगम्य बाणी का कीर्तन, श्रोताओं का वजद में आकर झूमना—सारा वातावरण ही विस्मयपूर्ण बना पड़ा था। पीर का गुस्सा जाता रहा और वह भी प्रभु के कीर्तन (स्तुति) में जुड़ गया। गुरु साहिब ने उसे समझाया कि सारे लोग खुदा की संतान हैं, बच्चों को दुख-कष्ट मिलने पर प्रभु परमात्मा खुश नहीं होता है।

हमजा गौंस को यह बताने के लिए कि सारा शहर झूठों का नहीं, बल्कि उसी स्थान पर सत्य ज्ञान के धारणकर्ता बसते हैं, गुरु जी ने भाई मर्दाना जी को एक पैसे का सच तथा एक पैसे का झूठ खरीदने के लिए भेजा। चाहे बहुत से दुकानदारों को इस सौदे की समझ नहीं पड़ी, परंतु एक दुकानदार, भाई मूले ने कागज की एक पर्ची पर 'मरना सच है, जीना झूठ' लिख कर मर्दाना जी को दे दिया।

जिस बेरी के नीचे बैठ कर सतगुर साहिबान ने देवी कीर्तन किया था, वहीं गुरद्वारा बना हुआ है।

पसरूर में : स्यालकोट से आप पसरूर आये। वहां मीआं मीर मिठा नाम के फकीर के साथ चर्चा हुई। फकीर ने नम्रता, मृदुलता तथा सेवा भावना से अनेकों हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया था। उसने गुरू नानक पातशाह को भी कहा :

पहिला नाउं खुदाइ दा, दूजा नाउं रसूल।
नानक कलमां जे पड़ें, तां दरगह पवें कबूल॥

(ये तुकें बाणी की नहीं है।)

सतगुर साहिबान ने उत्तर दिया कि यह तो ठीक है कि पहला नाम खुदा का है, परंतु यह बात गलत है कि दूसरा रसूल का है। खुदा के दर पर तो अनेकों रसूल (मुहम्मद साहिब) खड़े हैं। खुदा को मिलने के लिए 'कलमा' पढ़ने के स्थान पर निश्चित रास करनी चाहिए और प्रेम तथा श्रद्धा से खुदा की स्तुति करनी चाहिए।

मियां मिठा को गुरमत ज्ञान की निधि प्रदान करने के पश्चात गुरू जी वापिस करतारपुर आ गये। इस प्रकार दूसरा प्रचारक दौरा समाप्त हुआ।

तीसरा प्रचारक दौरा 9

(सन् 1518 से 1521)

तीसरा प्रचारक दौरा मुसलमान मत के धर्म स्थानों की ओर था। तीन वर्षों के इस दौरे में गुरु साहिबान ने मुसलमानों के पीरों फकीरों तथा मौलवियों के साथ विचार विमर्श करके उनको खुदा से दूर ले जाने वाले विचारों तथा धार्मिक रस्मों को त्यागने का उपदेश दिया। सन 1518 के दूसरे अर्द्ध-काल में सतगुरु जी भाई मर्दाना जी को साथ लेकर करतारपुर से चल पड़े।

पाकपट्टन में : माझा से होते हुए गुरू साहिब कसूर के रास्ते पाकपटन पहुँचे। पाकपटन का पहला नाम अयोधन था। वहाँ से बाबा फरीद जी की गद्दी पर बैठे हुए, उनके ग्यारहवें उत्तराधिकारी शेख ब्रह्म को मिले।

बाबा फरीद जी का वास्तविक नाम फरीदद्दीन मसऊद था। उनका जन्म हिजरी संवत 569 सन 1173 के महीना रमजान की पहली तारीख को मुल्तान के नगर कोठीवाल (दीपालपुर के समीप) हुआ। आजकल इसे "चाउली मुसेखा" कहते हैं। 16 वर्ष की आयु में वे मक्का में हज करने गये। वापिस आकर मुल्तान में दिल्ली के ख्वाजा कुतबद्दीन बखतियार उसी के मुरीद बन गये। ख्वाजा जी की मृत्यु के पश्चात अयोधन आ ठहरे। यहीं पर 93 वर्ष को आयु में (सन 1266) आप शरीर को त्याग गये। यहीं पर उनका गद्दी चल

शेख ब्रह्म से गुरू जी ने बाबा फरीद जी को बाणी प्राप्त की जिसमें 112 सलोक तथा 4 शबद शामिल थे। बाबा फरीद जी की बाणी इसलिए प्राप्त की थी क्योंकि वह गुरू साहिबान की अपनी विचारधारा से मेल खाती थी।

तुलंभे में : नगर तुलम्भा लाहौर से मुलतान जाने वाली सड़क पर है। यहां के निवासी, सज्जन नामक व्यक्ति ने, इस नगर से लगभग 9 मील की दूरी पर, मखदूम पूरे के समीप, मुसाफिरखाना बनाया हुआ था। सज्जन ने यह मुसाफिरखाना बनाया तो मुसाफिरों की सेवा तथा आराम के लिए था परंतु बुरे लोगों की संगत तथा रुपये पैसे के लालच ने उसको कुमार्ग पर डाल दिया था। वह आने जाने वाले धनवान मुसाफिरों को लूट लेता और उन्हें मारकर कुएं में फेंक देता था। नगर से दूर एकांत में होने के कारण, उसकी इन करतूतों का नगरवासियों को कोई पता नहीं चलता था. बल्कि वे तो सज्जन को जनमानस की सेवा करने वाला धर्मात्मा समझते थे और उसका मान सम्मान करते थे, और प्यार से शेख जी शेख जी कहकर बुलाते थे।

गुरू नानक पातशाह तथा मर्दाना जी सज्जन के इस मुसाफिर-खाने में पहुँचे। सतगुरू साहिबान के चेहरे की आभा देख कर सज्जन ने यह समझा कि आज कोई बहुत धनवान व्यक्ति आये हैं। उसने बहुत मान-सम्मान किया। रात को वह इंतजार करने लगा कि कब ये नये मुसाफिर सोयें तो वह उनका माल असबाब अपने कब्जे में कर ले। परतु सतगुर साहिबान ने एक शबद का गायन किया, जो श्री गुरु ग्रथ साहिब में आसा राग में, पृष्ठ 728 पर दर्ज है। इसकी पहली तुक है—"उजलु कैहा चिलकणा, घोटिमु कालडी मसु।" ज्यों-ज्यों सतगुरू जो शबद गायन करते जाते थे, सज्जन को ऐसा प्रतीत होता था कि उसके अपने पाप नंगे हो रहे थे। शबद खत्म हुआ। सज्जन, सतगुरु साहिबान के चरणों पर गिर पड़ा। अपने किये हुए गुनाहों की माफी मांगी तथा आगे से सच्चे धर्मात्मा लोगों वाला जीवन व्यतीत करने का इकरार किया। उसने एकत्र किया हुआ धन-माल गरीबों में बांट दिया और फिर तुलंभे में रहने लग गया। गुरू साहिबान ने उसे उस क्षेत्र का सिख प्रचारक नियुक्त किया और प्रचार का काम सौंपा।

मक्का की ओर: तुलम्भे से गुरुजी मक्का का हज करने जा रहे हाजियों के साथ जा मिले। पहरावा भी आपका हाजियों के साथ मिलता जुलता था। हाजियों में आप यह प्रचार करते रहे कि प्रमात्मा हर ओर तथा हर स्थान पर मौजूद है, उसका घर केवल काबे में नहीं है। प्रमात्मा की प्राप्ति, उसके संग सच्चे दिल से प्रीति करने से, उसकी शिक्षाओं के अनुरूप जीवन ढालने से हो सकती है। परमात्मा की प्राप्ति रोजे व्रत रखने, सुन्नत करवाने या धार्मिक स्थानों की यात्रा द्वारा नहीं हो सकती। पीरों फकीरों के रोजे, मकबरों की पूजा आदि प्रमात्मा की प्राप्ति की राह में रुकावट हैं।

इस प्रचार के फलस्वरूप सतगुरू जी, भाई मर्दाना जी सहित मुलतान, बहावलपुर, सखन शिकारपुर के रास्ते से लासा बेला तथा मेकरान के क्षेत्रों (ईरान के दक्षिण में समुद्र के किनारे) होते हुए हिमलाज पहुँचे। यहाँ से समुद्री जहाज के द्वारा मक्के की ओर चल पडे।

मक्का, अरब देश का शहर है। इसमें मुसलमानों का धर्म-मंदिर काबा स्थित है। पहले पहले यहाँ अनेकों मूर्तियां पड़ी हुआ करती थीं जिनकी लोग पूजा किया करते थे। परंतु हज़रत मुहम्मद साहिब ने ये मूर्तियां तुड़वा दीं और देवी देवताओं के स्थान पर यहाँ लोगों को खुदा की बंदगी में लगा दिया। वह मक्का जो पहले देवताओं का घर हुआ करता था, अब "रब्ब दा घर" हो गया।

काबे के मंदिर में जमीन से 5 फुट ऊंचा; सग असवद (काला पत्थर) जड़ा हुआ है जो कि 6-7 इंच लम्बा है। यात्री (हाजी) इसे चूमते हैं। वहां एक और पत्थर 'रुकनुल यमान" है जिसे हाजी दायें हाथ से छूते हैं। काबा का मंदिर रेशमी गिलाफ के साथ ढका रहता है और इसके चारों ओर परिक्रमा करने के लिए खुला स्थान है।

मुसलमान हर साल काबे को यात्रा करने जाते हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि प्रमात्मा काबे के मंदिर में निवास करता है। यात्रियों को हाजी कहा जाता है। इस यात्रा (हज) की भी अपनी ही मर्यादा है। मक्का के पास पहुँच कर हाजी शरीर पर केवल दो चद्दरें ही धारण करते हैं, और प्रभु की स्तुति का गीत "तबलीआगोत" गाते हैं। काबे के पास पहुँच कर, स्नान करने के पश्चात, काबा मंदिर की सात परिक्रमा करते हैं, तीन जल्दी-जल्दी और चार धीमे-धीमे। प्रत्येक परिक्रमा के पश्चात 'सग असवद' को चूमते हैं। धार्मिक प्रार्थनाएं की जाती हैं, खतबा (इमाम का उपदेश) सुना जाता है। दसवें दिन बकरे, दुम्बे, गाय या ऊंठ आदि की बलि दी जाती है। हाजी पशु की दाईं ओर खड़े होकर "अल्ला हू अकबर" कहकर उसकी गर्दन पर छुरी चलाता है। वापसी के समय फिर काबा की परिक्रमा की जाती है।

गुरु नानक जी तथा मर्दाना जी दूसरे हाजियों के साथ काबा पहुंच गये। यहां पहुँच कर सतगुरु साहिबान ने जो कौतुक किया वह अपनी मिसाल आप है। पहले तो मुसलमानों के देश, अरब में जाना, और फिर हाजियों के साथ मक्का में पहुँचना ही बहुत कठिन काम था, क्योंकि हज केवल मुसलमान ही कर सकते हैं और कोई व्यक्ति नहीं। यहां पहुँच कर जो साहस तथा निर्भयता का सबूत सतगुर साहिबान ने दिया वह भी बेमिसाल है। हाजियों को यह समझाने के लिए कि प्रभु काबे के मंदिर में ही नहीं बसता बल्कि वह तो हर स्थान पर, हर समय मौजूद है, गुरु जी ने अजीब खेल रचाया।

हज का आखिरी दिन था। रात को गुरुदेव काबे की ओर पैर पसार कर सो गये। एक काज़ी ने देखा तो शोर मचा दिया कि कौन काफिर आ कर 'अल्ला के घर' की ओर पैर करके सोया हुआ है। हाजियों की भीड़ लग गयी। सभी गुस्से में थे, काफिर को खुदा ग्रस्त जो बनाना था। सतगुरु निश्चिंत होकर सोये रहे। काजी ने गुरु जी को लात मारी। गुरु जी जाग पड़े और पूछा, काज़ी जी क्या बात है, इतने गुस्से में क्यों हो, मेरे से कोई भूल हो गई है क्या ?" काज़ी ने गुस्से में कहा, "अल्ला के घर की ओर पैर करके सोया हुआ है, इस

से बड़ा और कौन सा पाप है।" गुरु जी ने कहा, अच्छा भाई, जिधर अल्ला का घर नहीं, जिधर ख़ुदा मौजूद नहीं, मेरे पैर उधर कर दो।" इस छोटे से वाक्य ने काजी को हैरानी में डाल दिया। उसको समझ नहीं आ रहा था कि अल्ला का निवास किस ओर नहीं है। उसको हर ओर काबा ही काबा नज़र आ रहा था। वह गुरु साहिबान के चरणों पर गिर पड़ा और भूल के लिए माफी मांगी। हज़ारों हाजियों को भी अपनी गलती का एहसास हो गया।

यह सुनकर कि कोई पहुँचा हुआ व्यक्ति काबे में आया हुआ है, दूसरे दिन पढ़े लिखे मुसलमान, पीर फकीर और मौलवी गुरु जी के साथ धार्मिक विचार करने के लिए आ पहुँचे। सतगुरू जी ने अपने साथ थैले में वह बाणी भी रखा करते थे जो उन्होंने स्वयं रची थी व जो भक्तों से प्राप्त की थी। उस पोथी को देखकर चर्चा करने आये लोगों ने पूछा कि आप अपनी किताब खोलकर बताओ कि हिंदू बड़े हैं या मुसलमान? सतगुरु साहिबान ने उत्तर दिया, सभी ख़ुदा की संतान हैं, इसलिए सभी बराबर हैं। परंतु केवल हिन्दू या मुसलमान होने से व्यक्ति ख़ुदा की नजरों में स्वीकार्य नहीं है। ख़ुदा को वही व्यक्ति अच्छा लगता है जो ऊँचे आचरण वाला हो, जिसके अमल नेक हों। इस विचार चर्चा का वर्णन भाई गुरुदास जी ने अपनी पहली वार में इस प्रकार किया है :

'पुछनि गल ईमान दी, काजी मुला' कठे होई।
वडा सांग वरताइआ, लखि सके कुदरति कोई।
पुछनि खोलि किताब नो, वडा हिंदू कि मुसलमानोई।
बाबा आखे हाजीआं शुभ अमलां बाझहु दोवें रोई।
हिंदू मुसलमान दोइ, दरगह अंदर लैनि न ढोई।
कच्चा रंग कसुंभ दा, पाणी धोतै थिरु न रहोई।
करनि बखीली आप विचि, रामु रहीमु कुथाइ खलोई।
राहि शैतानी दुनिआ गोई।

इस प्रकार हाजियों का उद्धार करते हुए, उनके साथ ही गुरुदेव मदीने की ओर चल पड़े।

मदीने में : मदीना मक्का से तीन सौ मील के फासले पर है। यहाँ पर मुहम्मद साहिब का देहांत हुआ था। बीस दिन में गुरु जी यहाँ पहुंच गये। अब तो बहुत से हाजी उनके श्रद्धालु बन चुके थे। रास्ते में सुबह शाम सत्संग होने लग पड़ा—इलाही कीर्तन की अमृत धारा बरसती।

मदीने से हाजी अपने अपने देश वापिस चल पड़ते हैं। सतगुरु जी भी पंजाब को वापिस चल पड़े। लगभग छः मील की दूरी पर आप बसरे पहुंचे, वहां से बगदाद को चल पड़े। रास्ते में करबला गये, जहां "खिलाफत" के झगड़े में हज़रत मुहम्मद साहिब का दोहता इमाम हुसैन। अक्तूबर, 680 हिजरी को मारा गया था। हाजी लोग यहां पर भी आते हैं।

बगदाद में : करबला से आप बग़दाद पहुंचे। यहां लोगों का एक और भ्रम तोड़ा। मुसलमान यह समझते थे कि संगीत का प्रयोग नाचने वाली तथा कंजरियां करती हैं इसलिए ख़ुदा की बंदगी में इसका कोई स्थान नहीं है। इस विश्वास के अधीन ही वे राग को हराम कहते थे। सतगुरू साहिबान ने उन्हें (बगदाद वासियों को) समझाया कि संगीत या राग अपने आप में बुरा नहीं, बल्कि बुरा या अच्छा तो इसका प्रयोग है। यदि इसका प्रयोग काम-वासना भड़काने वाली रचनाओं को गाने के लिए किया जाये तो यह निश्चय ही "बुरा" होता है परंतु यदि इसका प्रयोग प्रभु की स्तुति, गुण-गायन के लिए किया जाय तो यह सर्वोत्तम वस्तु है।

कीर्तन एक ऐसा साधन है जो मनुष्य की सुरति को प्रभु के संग जोड़ने में सब से अधिक सहायक होता है। इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण गुरू जी ने बगदाद में ही दिया था।

शहर से बाहर सतगुरू साहिबान ने इलाही कीर्तन करना आरंभ कर दिया। पलों में ही यह खबर पीर दस्तगीर तथा मुल्ला—मौलवियों तक पहुँच गयी कि मुसलमानी शहर में कोई साधु गाकर बंदगी कर रहा है। फिर क्या था, मुसलमानी नेता व उनके अनुयायी हाथों में पत्थर उठाकर उस दिशा में भाग पडे, जिधर गुरू बाबा जी कीर्तन कर रहे थे। वहां पहुंचे तो पत्थर उनके हाथों में ही पकड़े रह गये। सतगुरु साहिबान के तेजस्वी चेहरे, अडोलता, निर्भयता तथा कीर्तन की मधुर ध्वनियों ने उन लोगों पर ऐसा प्रभाव डाला कि सब ने पत्थर फेंक दिये। जो आता गुरू साहिबान के चरणों में बैठ जाता और प्रभु की स्तुति सुनकर झूमने लग जाता।

यहां पर सतगुरु साहिबान की पीर दस्तगीर तथा शेख बहलो के साथ धर्म चर्चा हुई। इस चर्चा में सतगुरु साहिबान ने बग़दाद के लोगों को यह भी समझाया कि खुदा सर्व व्यापक है, वह (मुसलमानी विश्वास के अनुसार) किसी सातवें आसमान पर नहीं रहता है। यह भी बताया कि अकालपुरख की रचना में अनेकों ही पाताल तथा

आकाश हैं, उनकी गिनती नहीं हो सकती।

बगदाद निवासी गुरु जी के श्रद्धालु बन गये। उन्होंने सतगुरु साहिबान के वहां जाने की याद में तर्की बोली में 'कुतबा' लगाया हुआ है जो कि अब रेलवे स्टेशन बग़दाद से डेढ़ मील की दूरी पर है। इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है :

"देखो, हज़रत परवदगार बजुर्ग ने कैसी मुराद पूरी की कि बाबे नानक की ताअमीर नये सिरे बन गयी। सात बड़े वलियों ने इसमें सहायता की। उसकी तारीख यह निकली कि ने कबखद मुरीद ने पानी के लिए जमीन में फैज का चश्मा जारी कर दिया।"

इस कुतबे के समीप ही एक मीठे पानी का कुआं है, जो सतगुरु साहिबान ने लगवाया था। इलाके के दूसरे कुओं का पानी खारा है, पर इसका पानी मीठा है। उपरोक्त "कुतबे' में इसी कुएं को 'फज़ का चश्मा" कहा गया है।

पंजाब को वापसी : गुरु नानक साहिब बग़दाद से अपने देश वापिस चल पड़े। ईरान, तुर्किस्तान होते हुए अफगानिस्तान के शहर काबुल पहुंचे। सतगुरू साहिबान के आगमन की याद में यहां पर एक धर्मशाला कायम है।

काबुल से जलालाबाद पहुंचे। यहां पर आपकी याद में चश्मा तथा धर्मशाला है जिसका नाम "चोहा साहिब" है। वहां से चलकर शाही रास्ते से दर्रा खै बर पार करके पेशावर पहुंचे, और वहां से हसन अब्दाल आ गये।

हसन अब्दाल—पंजा साहिब : यहां पर आपने वली कंधारी के अहं को तोड़ा। यह फकीर करामातों के आसरे लोगों पर अपना प्रभाव डाले रखता था। उसके 'श्राप' के डर के कारण लोग उसके डेरे में आते रहते थे और भेंट आदि चढ़ाते रहते थे। वह एक छोटी सी पहाड़ी पर रहता था। भाई मर्दाना जी उसके पास पानी पीने गये तथा सतगुरू साहिबान के आने के बारे में बताया। पानी देने के स्थान पर फकीर ने उल्टा कहा कि यदि तेरा गुरू इतना अज़मतवाला है तो आत्मिक शक्ति द्वारा पानी नीचे ले आये। भाई मर्दाना जी वापिस आ गये और सारी बात गुरू साहिबान को बताई। गुरू जी के कहने पर भाई मर्दाना जी पुनः दो तीन बार वली के पास पानी लेने गये, परतु निराशा ही हुई। अंत. सतगुरू साहिबान न पहाडी के नीचे से एक पत्थर उठाया तो वहां पर झरना बह चला। फकीर ने

गुस्से में ऊपर से एक भारी पत्थर नीचे की ओर गिरा दिया । नीचे मर्दाना जी पानी पी रहे थे । गुरू साहिबान ने खड़े होकर उस पत्थर को हाथ से पकड़ लिया और पत्थर वहीं पर रुक गया । इस पत्थर पर गुरु साहिबान के पंजे के निशान अभी तक कायम हैं । वली बहुत हैरान हुआ और यह समझ कर कि भाई मर्दाना जी का गुरू, अल्ला तक पहुँचा हुआ व्यक्ति है, पहाड़ी के नीचे आया और गुरू के चरणों में गिर पड़ा । गुरू जी ने उसे समझाया कि प्रभु के बंदों का काम लोगों को करामत दिखाकर परेशान करना तथा अपने चेले चाटों की गिनती बढ़ाना नहीं है बल्कि निर्मल मन द्वारा खुदा की बंदगी करना, खुदा की संतान, मनुष्य जाति की सेवा करना है । इस स्थान पर अब प्रसिद्ध ऐतिहासिक गुरद्वारा, पंजा साहिब कायम है ।

सैदपुर की ओर : आप हसन अब्दाल से सैदपुर की ओर चल पड़े । रास्ते में जिला गुजरात के नगर डिंगा में एक योगी साधु को 'चालीहे' काट कर लोगों द्वारा वाह वाह करवाने से रोका । उसे प्रमात्मा की स्तुति में जुड़ने का उपदेश दिया । गांव-गांव धर्म प्रचार करते हुए सतगुरू जी सैदपुर पहुँचे । यहां पर उनका श्रद्धालु भाई लालो रहता था जिसके पास पहली उदासी (प्रचारक दौरे) के समय वे आरंभ में आये थे । अब भी उसके पास जाकर ठहरे । समाचार पहुँचा कि बाबर काबुल से चढ़ाई करके आ रहा है । होने वाली लूट मार के डर के कारण लोग भयभीत हो गये । सतगुरू साहिबान ने लोगों को निर्भय होने का उपदेश दिया । सतगुरू स्वयं भी वहीं पर ही रहे ताकि लोगों का धैर्य न टूटे और जबर-जुलम का टाकरा करने की व्यवहारिक शिक्षा दी जा सके ।

बाबर ने हमला कर दिया । उधर पठान हाकिमों ने मुकाबला करने के स्थान पर मुल्लाओं को कलाम पढ़ने (कुरान का पाठ करने) पर लगा दिया ताकि आफत से बचा जा सके । उधर बाबर ने लूट मचा दी । लूट, कत्ल, आग फूक तथा स्त्रियों के ऊपर हुए अत्याचारों के कारण सभी ओर हा-हा कार मच गई । शहर तबाह हो गया । जो मर्द स्त्रियां बच गये, उन्हें कैद कर किया गया । सतगुरू जी तथा भाई मर्दाना जी भी कैद हो गये । कैद में ही गुरू जी बाबर के अत्याचारों के बारे में दूसरे कैदियों के संग निर्भय हो कर बातें कर रहे थे और उन्हें निर्भय होने की प्रेरणा दे रहे थे । जहां दूसरे बंदी भयभीत व सहमे हुए थे, वहां गुरू पातशाह चढ़दी कला (बुलंदी) में थे । बाबर को इस अनोखे तथा निधड़क "फकीर" के बारे में खबर

पहुँचाई गयी। वह सतगुरू साहिबान को मिला। गुरू जी ने बड़ी निर्भयता क साथ बाबर को समझाया कि खुदा के बंदों को तंग करने से मनुष्य को कभी प्रसन्नता व खुशी प्राप्त नहीं हो सकती है। सतगुरू साहिबान की निर्भयता तथा फकीरी वेश को देख कर बाबर डर गया और उसने सारे कैदियों को रिहा करने का आदेश दे दिया। उधर से खबरें पहुँचीं कि कंधार पर हमला हो गया है। बाबर वापिस आ गया।

बाबर के इस हमले के बारे में सतगुरू साहिबान ने नीचे लिखे चार शब्दों का उच्चारण किया :

(1) आसा महला १, पृ. 360 (खुरासान खसमाना कीआ…)

(2) आसा महला १, असटपदीआं, पृ. 417 (जिनि सिरि सोहनि पटीआं……)

(3) आसा महला १, पृ. 417 (कहा सु खेल तबेला घोड़े…)

(4) तिलंग महला १, पृ. 722 (जैसी मैं आव खसम की बाणी ……)

इन शब्दों में जहां सतगुरू साहिबान ने बाबर को पाप की बारात लेकर आए लोगों से, जुलम करके "दान" छीनने वाला लुटेरा कहा है, वहीं युद्ध के समय मची लूट, हा हा कार, स्त्रियों की हुई बेइज्जती का भी बड़ा करुणामयी जिक्र किया है। यहां के पठान हाकिमों को भी खरी खरी सुनाई हैं कि वे जनता को अच्छा राज्य प्रबंध देने के स्थान पर अपने घरों में रंग रलियां मनाने में ही उलझे रहे। हमले से पूर्व भी उनके मुकाबले के लिए तैयारी न की गई। जब हमला हुआ तो फौजों को जंग में जूझने की, हल्ला शेरी देने के स्थान पर मौलवियों से धर्म पुस्तकों के पाठ आरंभ करवा दिये गये। तो फिर उनकी हार न होती, तो क्या होता ? यह तो होना ही था क्योंकि —

"अगो दे जे चेतीऐ, तां काइतु मिलै सजाइ।"

उजड़े हुए तथा भयभीत लोगों को ढांढस बंधाने के लिए गुरू जी कुछ दिन सैदपुर (सम्प्रति ऐमनाबाद) में ही ठहरे रहे।

सैदपुर से चल कर अपनी बसाई नगरी करतारपुर आ पहुँचे। इस प्रकार तीसरी उदासी समाप्त हुई। तब सन् 1521 का नवंबर का महीना था।

★

प्रचारक दौरों के पश्चात 10

(1521 से 1539)

बड़े बड़े प्रचारक दोरे समाप्त करने के पश्चात गुरू जी ने बाकी की आयु करतारपुर म व्यतोत करने का निणय किया और आयु के अंतिम 18 वर्ष यहीं पर ही बिताये। यहां आकर भी आप पंजाब (आजकल के पंजाब, हरयाणा तथा हिमाचल) में दूर दूर तक धर्म प्रचार करने जाते रहे। वृद्धावस्था में भी गुरू जी करतारपुर से चलते और दो-दो, तीन-तीन सौ मील का प्रचारक दौरा लगा कर वापिस आ जाते।

करतारपुर में गुरू जी ने अपने सिखों को नाम का जाप करने, धर्म की नेक कमाई करने तथा बांट कर खाने की व्यवहारिक शिक्षा दी। अमृत बेला में "जपुजी" तथा अन्य बाणियो के पाठ के पश्चात कोर्तन की झड़ी लग जाती। फिर सतगुरू जी तथा अन्य लोग अपने-अपने खेतों में चले जाते या दूसरे कामों में व्यस्त हो जाते। लोग अपनी आय का कुछ हिस्सा अनाज के रूप में धर्मशाला में देते, जिससे लंगर जारी रहता और जरूरतमद लोगों की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती। शाम को फिर "सोदर" का पाठ होता, सतगुरु जी लोगों को अपने धर्म के सिद्धांतों की शिक्षा देते और फिर प्रभु का स्तुति गायन किया जाता।

जैसे कि ऊपर व्यक्त किया गया है, करतारपुर से गुरु जी गांव गाव में धर्म प्रचार हेतु गये। कई स्थानों पर तो गुरू जी के आगमन की याद में गुरद्वारे बने हुए हैं। स्यालकोट, (आजकल जिला अमृतसर) गुरदासपुर, लाहौर मिंटगुमरी, फिरोजपुर, लुधियाना, पटियाला, होशियारपुर आदि जिलों के कई गांवों मे इस प्रकार के यादगारी गुरद्वारे बने हुए हैं। जिला होशियारपुर में, जहां पर अब कीरतपुर बसा हुआ है, आप साईं बुढण शाह जी को मिले। पिंजोर (चंडीगढ़ के समीप) शिमले की रियासत बशहर में भी गये।

सतगुरु साहिबान का वृद्धावस्था में स्थान-स्थान पर जाकर धर्म प्रचार करना, इस बात को दृढ़ करवाता है कि चाहे कोई धर्म कितना भी अच्छा हो, वह प्रचार के बिना फैल नहीं सकता। धर्म प्रचार के लिए जहां प्रचारक को ज्ञानवान तथा सर्वोच्च स्तर के व्यवहारिक जीवन वाला होने की आवश्यकता है, वहां पर इन गुणों से भी बढ़कर धर्म प्रचार हेतु तीव्र लगन की भी आवश्यकता होती है।

अचल, मुलतान तथा स्यालकोट का प्रचारक दौरा : सतगुरु साहिबान ने यह प्रचारक दौरा 61 वर्ष की वृद्धावस्था में फिर लगाया। इतना समय करतारपुर में टिके रहने के कारण, गांव-गांव प्रचार करने के कारण, सतगुरु साहिबान की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गयी थी। सतगुरु जी जहां कहीं भी जाते लोग भारी गिनती में वहां पहुँच जाते। इनमें गुरु जी के वे सिख भी होते, जो चरण पाहुल (चरणामृत) लेकर सिखों में प्रवेश कर चुके थे।

करतारपुर से चलकर सतगुरु जी तथा भाई मर्दाना जी मार्च 1530 में, शिवरात्रि के समय, अचल पहुँचे। यहां महांदेव (शिवजी) का मंदिर बना हुआ है। मंदिर तथा गांव दोनों का नाम "अचल" ही है। यह गांव जिला गुरदासपुर में, बटाले से तीन मील की दूरी पर है। यहां पर प्रत्येक शिवरात्री को सिद्ध-योगी इकट्ठे होते और मेला लगता था।

जब सतगुरु जी मेले पर पहुँचे तो भारी गिनती में लोग सतगुरु साहिबान के उपदेश सुनने के लिए उनकी सतसंगत में आ गये और योगियों की ओर कम लोग गये। इस से योगियों को बहुत ईर्ष्या हुई। सतगुरु जी के पास रासधारी (डरामा करने वाले) रास डाल रहे थे। योगियों ने करामात द्वारा उनके पैसों वाला लोटा छिपा दिया। यह कर्म उन्होंने लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए किया था। गरीब रासधारी योगियों के सम्मुख अनुनय-विनय करने लगे परंतु उन्होंने लोटा वापिस नहीं दिया। गरीबों के दर्दी, सतगुरु जी गरीबों का यह निरादर सहार न सके और उन्होंने लोटा ढूंढ कर उनको दे दिया। अत: सिद्धों का करामात का हथियार फेल हो गया। फिर योगी बहस करने पर उतर आये। उन्होंने गुरु जी को कहा कि आप एक बार फकीरी वेश धारण करने के पश्चात पुन: गृहस्थी क्यों बन गये हैं ? आपने तो दूध में कांजी डाल दी है। सतगुरु साहिबान ने बड़े प्यार से समझाया कि मैंने तो फकीरी धारण की ही नहीं थी ! मैं तो अपने मत के प्रचार के लिए स्थान-स्थान पर जाता रहा हूँ। दूसरे, तुम गृहस्थियों की निंदा करते हुए अच्छे नहीं लगते, क्योंकि तुम स्वयं अन्न-पानी तथा वस्त्रों के लिए इन गृहस्थियों के दर पर जाकर अलख जगाते हो। तुम्हारे जैसे निकम्मे लोगों से परिश्रमी गृहस्थी हजार दर्जे अच्छे हैं, जो अपने हाथों द्वारा कार-विहार करके अपना निर्वाह करते हैं, आये गये की सेवा करते हैं और तुम्हारे जैसे निकम्मे लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

योगी निरुत्तर हो गये परंतु उन्होंने हठ का त्याग नहीं किया बल्कि गुरु जी को करामात दिखाने के लिए कहने लगे। गुरु जी ने

कहा कि प्रमात्मा के नाम को हृदय में बसाना ही सब से बड़ी करामात है। प्रभु अपने सेवकों के पर्दे ढकता है और उन (सेवकों) के मन को दुख-सुख के समय अडिग रहने का बल प्रदान करता है। उसके सेवक उसकी रज़ा में खुश रहते हैं—वे भला करामात काहे को दिखायें? गुरु जी की यह बात सभी लोगों को बहुत पसंद आयी और योगी, लोगों पर अपना प्रभाव डालने में पूरी तरह असमर्थ रहे। इस चर्चा में भंगरनाथ, चरपट, लोहारीपा आदि योगियों ने विशेष तौर पर सतगुरु साहिबान से अनेक प्रश्न किये थे।

अचल बटाले में योगियों के साथ जो चर्चा हुई थी, सतगुरु साहिबान ने उसे अपनी बाणी "सिध गोसटि" में कलमबंद किया है, जो कि रामकली राग में, श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में दर्ज है।

मुलतान में : गुरु जी तथा भाई मर्दाना जी अचल बटाले से मुलतान आ गये। मुलतान पीरों, फकीरों का गढ़ था। यहां पर गज़नी से आये प्रसिद्ध सूफी शमस तबरेज़ का मकबरा था। शमस अनल हक (मैं रब्ब हूं, मैं ब्रहम हूं) का नारा लगाता था। यह नारा कट्टड़ मुसलमानों को पसंद नहीं आया। कट्टड़ मौलवियों के फतवे के अनुसार समस की खाल उतार कर, उसको शहीद कर दिया गया। उसके श्रद्धालुओं ने शहादत वाली जगह पर मकबरा बनवा दिया और शनैः शनैः वे उस मकबरे की ही पूजा करने लग पड़े।

सतगुरु जी मुलतान पहुँचे। शमस के रोज़े में डेरा लगाया। वे समीप के बगीचे में गये। वहां रोज़े के पीर, यह बताने के लिए कि हमारा मत दूध की भांति निर्मल तथा बेदाग़ है, दूध का कटोरा भर लाये और गुरु जी को पेश किया। अंतर्यामी गुरु जी ने बगीचे में से चमेली का फूल लेकर दूध के ऊपर रख दिया। वे बताना चाहते थे कि बेदाग़ जीवन जीने के लिए संसार में माया से इस प्रकार निर्लिप्त रहना चाहिए, जैसे चमेली का फूल दूध पर तैर रहा है। पीरों फकीरों को यह भी समझाया कि मकबरों की जिआरत तथा पूजा—पत्थर पूजा ही है। इसके स्थान पर खुदा की बंदगी ही करनी चाहिए। अपने आप को "ब्रहम" नहीं कहना चाहिए, बल्कि 'तूं ही तूं' करते हुए खुदा में अभेद हो जाना चाहिए। मनुष्य खुदा की अंश होते हुए भी, खुदा के मुकाबले में बहुत नगण्य सी हस्ती का मालिक है।

पीरों ने अपनी गलती को समझा। गुरू जी की याद को ताज़ा रखने के लिए, उन्होंने कागज पर सतगुरू साहिबान के पंजे का निशान लगवा कर रख लिया।

स्यालकोट में दूसरी बार : मुल्तान से चलकर, गांवों में गुरमत का प्रचार करते हुए, सतगुरू जी स्यालकोट पहुँचे। आप वहां पर दूसरे प्रचारक दौरे के दौरान गये थे। भाई मूला उनका श्रद्धालु बना था। वहां पर सतसंग भी चालू हो गया था। इस बार जब सतगुरू जी वहाँ पहुँचे तो दूसरे सतसंगी तो उनके दर्शन करने आये, परतु भाई मूला जी नहीं आये। व्यापार में उन्नति तथा रूपये पैसे की बहुतायात ने मूले का मन ही बदल दिया था। वह मूला, जो कभी कहता था कि "जीना झूठ और मरना सच है" अब धन जोड़ने में ही लगा हुआ था। वह इतना अहंकारी हो गया था कि सतसंग में आने को, तथा गुरमुखों की संगत करने को व्यर्थ का कार्य समझता था।

सतगुरु साहिबान ने भाई मर्दाना जी को, मूले को बुलाने भेजा। परंतु मूले ने अपनी स्त्री के द्वारा यह कहलवा दिया कि वह घर पर नहीं है। इन दिनों में ही उसको सांप काटने से मृत्यु हो गई। सतगुरु साहिबान को उस पर बड़ी दया आई—उनका एक सिख जिसने कुछ वर्ष पूर्व माया को वास्तविकता को पहचानता था, वह माया का दास बनकर इस संसार से चला गया। इस दया को गुरु जी ने अपनी बाणी में इस प्रकार व्यक्त किया है :

> नालि किराड़ा दोसती, कूड़ै कूड़ी पाइ ॥
> मरणु न जापै मूलिआ, आवै कितै थाइ ॥

(सलोक वारां ते वधीक, पृ. 1412)

भाई मूले के प्रति उच्चारित इस सलोक को यदि सतगुरु साहिबान के श्रद्धालु आज अपने मन में बसा लें तो उनका भी लोक परलोक संवर सकता है।

कुछ दिन स्यालकोट में रहकर गुरदेव फिर करतारपुर आ गये।

बाबा बुड्ढा जी : गुरू नानकदेव जी धर्म प्रचार के लिए कई बार रावी से इस पार भी आया करते थे। एक बार आप कत्थू नंगल नामक गांव में आये जहां उनकी मुलाकात एक अनोखे बालक "बुड्ढा जी" से हुई। ये बुड्ढा जी ही बाद में सिख इतिहास में बाबा बुड्ढा जी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

"बुड्ढा" जी का जन्म उपरोक्त गांव में अक्तूबर 1519 में हुआ था। छोटी आयु में आप बकरियां चराया करते थे, जैसे कि आजकल जाट जमींदारों के बच्चे गांवों में गाय, भैंस आदि चराते

हैं। 12 वर्ष की आयु में बूढ़े को सतगुरू साहिबान के दर्शन हुये थे। इसने बड़े प्यार के साथ सतगुरु साहिब को बकरी का दूध पेश किया था और आत्मिक जीवन से संबंध रखने वाले कई प्रश्न पूछे थे। सत गुरुजी इस तीक्ष्ण बुद्धि वाले बालक को मिलकर बहुत प्रसन्न हुए थे। इस छोटे से 'ब्रह्म ज्ञानी' को सतगुरु साहिबान ने स्वाभाविक ही कहा था, "काका ! तूं तो छोटी सी आयु में ही बूढ़ों वाली बातें करता है। तूं बूढ़ा नहीं बुड्ढा है।" तभी से आपका नाम बुड्ढा जी पड़ गया। आप सतगुरू साहिबान के अनन्य व प्रसिद्ध सिखों में से गिने जाने लगे। छटे पातशाह तक आपजी ही गुरगद्दी की रसम निभाते रहे। साहिबज़ादा श्री हरिगोबिंद साहिब को आप जी ने ही सांसारिक, आत्मिक तथा शस्त्र-विद्या में निपुण किया था।

माता पिता का देहांत : बाबा कालू जी तथा माता त्रिपता जी सवत 1579 (सन 1522) में करतारपुर में ही शरीर त्याग गये।

भाई मर्दाना जी का देहांत : भाई मर्दाना जो, जो बचपन से ही सतगुरू साहिबान के साथी थे और सारे प्रचारक दौरों में सतगुरू साहिबान के साथ रहे थे, 13 माघ, संवत्त 1591 (सन 1534) को करतारपुर में शरीर त्याग गये।

भाई लहणा जी को गुरगद्दी प्रदान करना : भाई लहणा जी का जन्म 31 मार्च, 1504 ई० को गांव "मते दी सरां", जिला फीरोजपुर में हुआ था। राजसी गड़बड़ तथा लूटमार के कारण यह गांव तबाह हो गया और फिर इसे एक नागे साधू ने बसाया। इस कारण अब इसका नाम 'नागे की सरा' है। इनके पिता बाबा फेरू जी इस गांव को छोड़कर पहले 'हरी के' और फिर खडूर आ गए और दुकान कर ली। बाबा फरू जी वेद शास्त्रों के सनातनी धर्म को मानने वाले थे और हर साल वैष्णव देवी की यात्रा करने के लिए जत्था लेकर जम्मू जाते थे। 1526 में वे शरीर छोड़ गए और संग (जत्थे) को हर साल वैष्णव देवी की यात्रा के लिए ले जाने का आदेश भाई लहणा जी को कर गये। भाई लहणा जी पांच साल देवी की यात्रा को जाते रहे।

भाई लहणा जी ने खडूर में गुरू नानक पातशाह के एक सिख भाई जोध से गुरबाणी सुनी। यह प्रचलित जनभाषा में थी, जो भाई लहणा जी को स्वत: ही समझ आ गई। आपने भाई जोध से गुरु जी का नाम पता पूछ कर उनके दर्शन करने का मन बनाया।

सन 1532 में देवी दर्शन को जाते हुए लहणा जी करतारपुर आये। सतगुरू साहिबान के दर्शन किए, गुरबाणी का कीर्तन सुना व सतगुरु साहिबान के वचन सुने। इस सब का इतना प्रभाव पड़ा कि भाई लहणा जी गुरू नानक पातशाह के ही होकर रह गये। आप ने 'संग' को यह कह दिया कि उन्हें 'सच्चा गुरू' मिल गया है और अब उनको नाममात्र के देवो देवताओं की पूजा की आवश्यकता नहीं रही। इसलिए वे अब देवी दर्शनों को नहीं जायगे, बाकी 'संग' चाहे चला जाये।

भाई लहणा जी का पलों में ही मनमत तथा व्यर्थ के कर्म कांडों को त्याग देना और गुरमत को अपना लेना संगत के लिए बहुत हैरानी वाली बात थी। सतगुरू जी भी भाई लहणा जी की इस दृढ़ता से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने भाई लहणा जी को अपना उत्तराधिकारी बनाने का फैसला कर लिया।

भाई लहणा जी ने सन 1532 से 1539 तक गुरू साहिब तथा सिख संगत की सेवा की। इस समय के दौरान आप दुकान का काम देखने के लिए कभी-कभी खडूर भी जाते रहते थे।

गुरु नानक पातशाह ने भाई लहणा जी को 'गुरू' बनाने की तयारी आरंभ कर दी। कीर्तन, कथा व उपदेशों के द्वारा भाई लहणा जी को गुरमत विचारधारा दृढ़ करवाई। फिर हुकम मानने की शिक्षा दी। सिख इतिहास में 6-7 साखियाँ प्रसिद्ध है जिनसे पता लगता है कि भाई लहणा जी ने गुरू आदेशों को मानने की उच्चतम उदाहरणें पेश की हैं। गुरु जी ने जान बूझ कर भाई लहणा जी को वह काम करने के लिए कहा जो काम ब्राह्मण समाज में शूद्र लोग ही करते थे। जहाँ दूसरे सिखों ने यह आदेश मानने में कुछ झिझक दिखाई, वहीं भाई लहणा जी बिना किसी हिचकिचाहट के श्रद्धा सहित गुरु आदेशों पर फूल चढ़ाते रहे। हुकम मानने की जो साखियां प्रसिद्ध हैं, वे हैं— कीचड़ में भीगी हुई धान की गांठें उठाना, गन्दे खड्ड में से कटोरा निकाल कर लाना, धर्मशाला में से मरी हुई बिल्ली उठाकर बाहर फेंकना, सर्दी के दिनों में आधी रात को धर्मशाला की दीवार खड़ी करना, सर्दी की रात के समय ही रावी नदी पर कपड़े धोने जाना व सतगुरू साहिबान के कहने पर मुर्दा खाने के लिए भी तैयार हो जाना ; इत्यादि।

हुकम मानने की इन घटनाओं से गुरू नानक पातशाह बहुत प्रसन्न हुए। हुकम मानने वाला ही दूसरों को हुकम करने का

अधिकार रखता है। इसलिए भाई लहणा जी को गुरु जी ने हुकम मानने की ट्रेनिंग दी थी।

जब सतगुरू साहिबान की पूरी तसल्ली हो गई कि भाई लहणा जी उनके द्वारा आरम्भ की गई सिख लहर की अगवाई करने के योग्य हो गए हैं तो सतगुरू साहिबान ने भाई लहणा जी को गुरगद्दी प्रदान की और उनका नाम गुरू अंगद देव रख दिया। पहले गुरू नानक देव जी ने गुरू अंगद जी के आगे शीश झुकाया और बाद में सारी संगत ने उत्तराधिकारी गुरू अंगद देव जी के चरणों में शीश निवाया।

गुरगद्दी प्रदान करते समय गुरू नानक पातशाह ने गुरू अंगद देव जी को गुरबाणी की वह पोथी भी दे दी जिसमें कि उनकी अपनी बाणी तथा भक्तों की बाणी संकलित थी। 'पुरातन जनमसाखी' में इस बात का वर्णन इस प्रकार किया गया है : "तित महल जो शबद होआ, सो पोथी गुरु अंगद जोग मिली।" मिहरबान की पोथी में लिखा हुआ मिलता है : "तब गुरू नानक जी गुरू अंगद कउ शबद की धारणा देकर संवत 1596 असु वदी 10 दसमी कउ आप सचखण्ड सिधारे।"

गुरू अंगद देव जी को गुरगद्दी देने के पश्चात, गुरु नानक पातशाह 22 सितम्बर, 1539 को ज्योति में विलीन हो गए।

गुरु नानक देव जी की बाणी 11.

गुरबाणी वह ईश्वरीय ज्ञान है, जो सतगुरु तथा अकालपुरख की अभेदता में से उत्पन्न होता है। जब गुरु अकालपुरख में लीन हो जाता है, तो उसमें तथा अकालपुरख में भिन्न-भेद खतम हो जाता है! दोनों एक रूप हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में सतगुरु साहिबान के कहे हुए वचन ही बाणी कहलाते हैं। इस प्रकार ये बाणी गुरु की अपनी समझ, सोच या अकल की उपज नहीं होती, बल्कि अकालपुरख की अपनी बाणी होती है जिसकी समझ अकालपुरख गुरु को करवाता है। यह परम सत्य का ज्ञान होता है, जिसकी प्राप्ति गुरु के बिना किसी और को नहीं होती। इसी को ही शबद का नाम दिया गया है।

गुरु नानक देव जी ने अपने भिन्न-भिन्न स्वरूपों में, उच्चारित बाणी में यह बात स्पष्ट कर दी थी कि बाणी उच्चारित करने की प्रेरणा अकालपुरख स्वयं देता है।

पहले आमे में ही गुरु नानक देव जी ने यह फुर्माया था कि मैंने वही कुछ कहा है, जो अकालपुरख ने मेरे से कहलवाया है। यथा :

'ता' मैं कहिआ कहणु, जा तुझै कहाइआ ॥
(वडहंस महला १, पृ. 566)

आप कहते हैं कि अकालपुरख गुरु के साथ समा जाने (अभेद होने) के पश्चात शब्द की निधि प्रदान करता है :

गुर महि आपु समोइ सबदु वरताइआ ॥
(वार मलार महला १, पृ 1279)

बाबर के हमले का ज़िक्र करते हुए भी गुरु नानक पातशाह ने फ़ुर्माया था कि मुझे जिस तरह की बाणी फुरती है, मैं उसी प्रकार बयान करता हूँ :

'जैसी मै आवै खसम की बाणी तैसड़ा करी गिआनु वे लालो ॥'
(तिलंग महला १, पृ. 723)

अपने चौथे जामे में, गुरु रामदास जी के स्वरूप में भी गुरू नानक पातशाह ने यही कहा था :

'सतिगुर की बाणी, सति सति करि जाणहु गुरसिखहु
हरि करता आपि मुहहु कढाए ॥'
(वार गउड़ी महला 4, पृ. 308)

गुरू अर्जुन पातशाह उपरोक्त विचार को इन शब्दों के द्वारा प्रकट करते हैं :

हउ आपहु बोलि न जाणदा, मैं कहिआ सभु हुकमाउ जीउ ॥
(गुणवंती, सूही महला 5, पृ. 763)

गुरू नानक पातशाह को (पहले जामे में) जो ज्ञान प्रभु से प्राप्त हुआ, अथवा जो बाणी उन्होंने उच्चारी उसका विवरण नीचे दिया जाता है। यह विवरण गुरबाणी के प्रसिद्ध टीकाकार प्रिंसीपल साहिब सिंघ जी की पुस्तक 'जीवन बृतांत श्री गुरू नानक देव जी' (पंजाबी) में से लिया गया है।

गुरू जी ने 'जपु जी' को छोड़ कर बाकी सारी बाणी रागों में रची है। आपने 19 रागों का प्रयोग किया है।

बाणी का विवरण :

(1) 'जपु'—यह बाणी श्री गुरू ग्रंथ साहिब के आरंभ में ही अंकित है।

(2) सिरी राग—शब्द 33, अष्टपदीआं 17+1, पहरे 2, सलोक 7 (वार में दर्ज)।

(3) माझ—अष्टपदी 1, 'वार'—27 पउड़ीआं, सलोक 46 (वार में)।

(4) गउड़ी—शब्द 20, अष्टपदीआं 18, छंत 2 ।

(5) आसा—शब्द 40, अष्टपदीआं 22, पटी 1 छंत ', 'वार' 24 पउड़ीओं की, सलोक 4 (वार में)।

(6) गुजरी—शब्द 5, अष्टपदीआं 5 ।

(7) बिहागड़—केवल सलोक 5 ('वार' में दर्ज हैं)। इस राग में आपकी कोई बाणी नहीं है।

(8) वडहंस—शब्द 3, छंत 2, अलाहणीआं 4, सलोक 3 (वार में)।

(9) सोरठि—शब्द 12, अष्टपदीआं 4, सलोक 3 (वार में)

(10) धनासरी—शब्द 8, अष्टपदीआं 2, छंत 3 ।

(11) तिलंग—शब्द 5, अष्टपदी-1

(12) सूही—शब्द 9, अष्टपदीआं 5, कुचजी-सुचजी 2, छंत 5 सलोक 21 (वार में)

(13) बिलावल—शब्द 4, अष्टपदीआं 2, छंत 2, सलोक 2 (वार में)

(14) रामकली—शब्द 11, अष्टपदीआं 9, 'ओंकार' 54 पउड़ीआं, 'सिध गोसटि' 73 पउड़ीआं, सलोक 19 (वारां में)

(15) मारू—शब्द 12, अष्टपदीआं 11, सोलहे 22, सलोक 18 (वारां में)

(16) तुखारी—छंत 6

(17) भैरउ—शब्द 8, अष्टपदी 1

(18) बसंत—शब्द 10, अष्टपदीआं 8

(19) सारंग-शब्द 3, अष्टपदीआं 2, सलोक 33 (वार में)।

(20) मलार—शब्द 9, अष्टपदीआं 5, 'वार' 27 पउड़ीओं की सलोक 25 (वार में) (22) सलोक वारां ते वधीक—32

(21) प्रभाती—शब्द 17 ; अष्टपदीआं 7 ↓

कुल बाणी के शब्द—206, अष्टपदीआं—121, छंत—25, वारां-3, इन 'वारां' की पउड़ीआं 78) सलोक 256 (12 'वारां' में तथा 'वारां ते वधीक') विशेष बाणीआं पहरे 2, पटी 1, अलाहणीआं 5, कुचजी—1, सुचजी—1, ओंकार—54, सिध गोसटि—738 पउड़ियां, सोलहे 22।

गुरू नानक देव जी के धर्म सिद्धांत 12

गुरु नानक देव जी के धर्म सिद्धांतों को समझने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि गुरबाणी में 'धर्म' की व्याख्या किस प्रकार की गई है।

गुरबाणी के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सिख गुरुओं ने 'धर्म' को केवल प्रभु की जानकारी, उससे मेल के साधनों या पूजा विधियों तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि इसको एक संपूर्ण तथा आदर्श जीवन पद्धति के अर्थों में लिया है। धर्म का संबंध मानव जीवन के सभी पक्षों से होना है। इसीलिए गुरु नानक देव जी ने जहां प्रभु के स्वरूप की व्याख्या की है, प्रभु प्राप्ति का मार्ग दर्शाया है, प्रमात्मा के संग एकमेव होकर प्रभु भक्ति के गीत गाये हैं, वहां समाज में आई बुराइयों का वर्णन करके, उनके हल भी सुझाये हैं, समाज के आर्थिक ढांचे तथा राज प्रबंध के बारे में भी विचार प्रकट किये हैं। अपने जीवन काल में उन्होंने अधर्मी (पापी, जबर-जुल्म करने वाले) राजाओं की बड़े कड़े शब्दों में आलोचना की है। उन्होंने तथा उनके अन्य उत्तराधिकारी गुरू अपने-अपने समय में समाज सुधार में जुटे रहे तथा सत्य की आवाज़ को बुलंद करने के कारण राजाओं की करोपी के शिकार भी हुए।

गुरू अर्जुन देव जी ने धर्म की व्याख्या इन शब्दों में की है :

सरब धरम महि स्रेसट धरमु ॥
हरि को नामु जपि, निरमलु करमु ॥

(गउड़ी सुखमनी—पृ. 266)

इसका अर्थ है—प्रभु का नाम सुमिरन करना, उसके नाम का जाप करना तथा निर्मल कर्म करना ही श्रेष्ट धर्म है। 'निर्मल' कार्यों में अपने आचरण को ऊंचा व निर्मल रखना, निर्भय तथा निरवैर होना, न किसी को डराना और न ही अत्याचार के समक्ष झुकना, समूह मानव जाति की, बिना देश, धर्म जाति, लिंग, रंग के भेद भाव से सेवा करना······आदि सब कुछ आ जाता है।

इस प्रकार से धर्म का ध्येय एक आदर्श मनुष्य का निर्माण करना हो जाता है जो जीवन के सभी पक्षों—आध्यात्मिक, सामाजिक, सदाचारक, आर्थिक राजनीतिक आदि के बारे में सही विचारों का धारणकर्ता हो और उस 'विचार' के अनुरूप व्यवहार भी करता हो।

उपरोक्त विचार को ध्यान में रखते हुए हमें गुरू नानक देव जी के विचारों को मोटे तौर पर तीन भागों में बांटना होगा। वे हैं—

(क) आध्यात्मिक (ख) सामाजिक (ग) राजनीतिक।

(क) आध्यात्मिक विचारधारा।

(1) **मानव जीवन का ध्येय** : मनुष्य के लिए सब से बड़ा प्रश्न यही है कि उसके जीवन का मनोरथ क्या है, वह संसार में क्यों आया है ? नास्तिक तथा पदार्थवादी मन तो मनुष्य को 'खाओ, पीओ करो आनंद' का उपदेश देते हैं, परंतु धर्म तथा विशेष रूप से गुरू नानक का धर्म, यह चाहता है कि मनुष्य ऊंचे तथा निर्मल किरदार का धारणी बनकर, शुभ गुणों को अपना कर दुःख सुख से निर्लिप्त रहने की अवस्था को प्राप्त करे और विकार-रहित जीवन व्यतीत करते हुए सारे संसार के भले के लिए तत्पर रहे। परंतु ऐसा जीवन बातों से ही नहीं बन जाता। ऐसे जीवन की बनावट प्रभु की स्तुति द्वारा ही बनाई जा सकती है। प्रभु स्वयं समूह गुणों तथा अच्छाइयों का भण्डार है, उसका जाप करने वाले भी प्रभु गुणों के धारणी हो जाते हैं। वह अपने प्रभु को अपने अंग-संग प्रतीत करके बड़ी से बड़ी कठिनाई तथा दुख का सामना भी सहज ही कर लेते हैं। गुरू नानक पातशाह कहते हैं :

जै सिउ राता, तैसो होवै ॥
आपे करता करे सु होवै ॥

(राग आसा महला १, पृ. 41।)

इस प्रकार मानव जीवन को सकार्थ करने के लिए प्रभु के नाम का जाप करना, उसकी स्तुति करना, गुण गायन करना मनुष्य का परमावश्यक कर्तव्य बन जाता है।

वणजु करहु वणजारिहु, वखरु लेहु समालि ॥
तैसी वसतु विसाहीऐ, जैसी निबहै नालि ॥
अगै साहु सुजाणु है, लैसी वसतु समालि ॥१॥
भाई रे, रामु कहहु चितु लाइ।
हरिजसु वखरु लै चलहु, सहु देखै पतीआइ ॥

(सिरी राग महला १—पृ. 22)

अकालपुरख के नाम का सुमिरन, अथवा उसकी स्तुति करने से मनुष्य के मन से विकारों तथा पापों की मैल उतर जाती है, दुःख—क्लेशों का नाश होता है और सुख की प्राप्ति होती है :

—भरीऐ मति पापा कै संगि ॥ ओहु धोपै नावै कै रंगि ॥ (जपुजी-

— गावीऐ सुणीऐ मनि रखीऐ भाउ ।।
दुख परहरि, सुखु घरि लै जाइ ।।   (जपुजी—2)

जपुजी साहिब में ही, 'मंन' की पउड़ियों (पदों)—पउड़ी नं० 11 से 15 तक, गुरू नानक पातशाह ने स्पष्ट कर दिया है कि अकाल-पुरख के नाम का जाप करने वाले मनुष्यों की अवस्था इतनी ऊँची हो जाती है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उसकी 'सुरति' ऊँची हो जाती है, मन में जागृति आ जाती है, वह विकारों की चोटें नहीं खाती, मनुष्य जन्म-मरण के भवर से बच जाता है, वह मुक्ति प्राप्त कर लेता हैं और प्रभु-प्रीतम में अभेद हो जाता है।

जो मनुष्य अपने जीवन में प्रभु की स्तुति करते हैं, उसकी याद को हमेशां अपने मन में टिकाये रखते हैं तथा नाम-मार्ग पर चलकर सच्चा तथा निर्मल, सबके भले वाला जीवन व्यतीत करते हैं, वे यहां से अपना जीवन सफल करके जाते हैं और प्रभु की दृष्टि में स्वीकार्य होते हैं। जपुजी के अंत के सलोक में गुरुदेव कहते है :

जिनी नामु धिआइआ, गए मसकति घालि।
नानक ते मुख उजले, केती छुटी नालि।।१।।   (जपुजी-8)

(II) **प्रभु की पहचान तथा स्वरूप :** नाम सुमिरन के मार्ग पर चलने से पूर्व इस बात का भी पता लग जाना चाहिए कि किस 'प्रभु' के नाम का सुमिरन करना है। भारत में लोग कई देवी-देवताओं को ईश्वर समझ कर (उनकी पूजा करते थे, मूर्ति पूजा जोरों पर थी) पुरातन धर्मों ने यह विचार फैलाया हुआ था कि प्रभु, मानव देह (शरीर) धारण करके देवताओं के रूप में संसार में आता है। इसी विश्वास के अधीन ही देव पूजा प्रचलित हो गई थी। गुरू नानक देव जी इस विचार से कतई सहमत न थे। वे तो कहते थे कि प्रभु कभी भी जन्म नहीं लेता और देवी देवताओं की पूजा मनुष्य को प्रभु से तोड़ती है। जो मनुष्य एक अकालपुरख को छोड़कर किसी और देवी देवता की पूजा करते है, उनका जीवन व्यर्थ चला जाता है—वे संसार सागर को पार करने के स्थान पर, इसमें डूब जाते है।

खसमु छोडि दूजे लगे, डुबे से वणजारिआ ।।
(वार, आसा पृष्ठ 470)

सिखों को देवी-देवताओं की पूजा से बचाने के लिए, गुरू नानक देव जी ने 'मूल मन्त्र' मे अपने प्रभु के स्वरूप का वर्णन किया

है। कवि लोग नवीन रचना का आरंभ करते समय अपने इष्ट की स्तुति में 'मंगलाचरण' लिखा करते थे। 'मूल मंत्र' भी मंगलाचरण ही है, जो प्रत्येक राग अथवा बाणी के आरंभ में लिखा होता है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी के आरंभ में, 'जपु' जी को लिखने से पूर्व भी 'मूल मंत्र' लिखा गया है, जो इस प्रकार है :

> १ ओंकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
> अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरप्रसादि ॥

इसका अर्थ है ; अकालपुरख एक है, उसका नाम अस्तित्व वाला है (भाव उसका अस्तित्व हर समय है), वह संपूर्ण सृष्टि का रचनाकार है, सभी में व्यापक है, भय रहित है, वैर रहित है, उसका स्वरूप काल से परे है, (भाव वह नाश रहित है), वह योनियों में नहीं आता, जन्म नहीं लेता, उसका प्रकाश अपने आप से ही हुआ है, भाव-उसे पैदा करने/बनाने वाला कोई और नहीं है, वह सतगुरु की कृपा से प्राप्त होता है।

मूल मंत्र अथवा मंगलाचरण सिख विचारधारा का केन्द्रीय आधार है। इसके ऊपर ही सिख फिलासफी का निर्माण हुआ है। इसके अन्तर्गत आये विचारों को बार-बार दुहराया गया है व उनकी व्याख्या की गई है। इस संबंध में गुरु नानक साहिब की बाणी में आए कुछ विचार नीचे अंकित किए जाते हैं।

(i) अकालपुरख केवल एक है।

—ऐकम ऐकंकरु निराला ॥
अमरु अजोनी जाति न जाला ॥
(बिलावलु महला १, पृ. ८३४)

—ऐकंकारु अवर नही दूजा, नानक ऐकु समाई ॥
(रामकली महला १, पृ. 930)

—साहिब मेरा ऐको है ॥ ऐको है भाई ऐको है ॥
(आसा महला १, पृ. 350)

—न देव दानवा नरा ॥ न सिध साधिका धरा ॥
असति ऐक, दिगरि कुई ॥ ऐक तुई ऐक तुई ॥
(वार माझ, सलोक महला १, पृ. 143)

—तिसहि सरीकु न दीसै कोई,
आपे अपर अपारा है ॥ (मारू महला १, पृ. 1026)

(ii) अकालपुरख अस्तित्व वाला है :

—आदि सचु. जुगादि सचु ।।
है भी सचु, नानक, होसी भी सचु ।। (जपुजी १)

—तू सदा सलामति निरंकार ।। (जपुजी 3)

—आदि अनीलु अनादि अनाहति,
जुगु जुगु ऐको वेसु ।। (जपुजी 7)

—किरतम नाम कथे तेरे जिहबा,
सति नामु तेरा परा पूरबला ।। (पृ. 108?)

(iii) अकालपुरख संपूर्ण ब्रह्माण्ड का निर्माता है तथा उसमें सर्वव्यापक है ।

—तूं करता पुरखु अगंमु है, आपि सृसटि उपाती ।।
रंग परंग उपारजना, बहु बहु बिधि भाती ।।
तूं जाणहि जिनि उपाईऐ, सभु खेलु तुमाती ।।
(माझ की वार, पउड़ी—पृ 138)

—तुधु संसारु उपाइआ । सिरे सिरि धंधे लाइआ ।।
वेखहि कीता आपणा, करि कुदरति पासा ढालि जीउ ।।
(सिरो राग महला १, पृ. 7)

—ब्रहमा बिसनु महेस इक मूरति, आये करताकारी ।।
(रामकली महला १, पृ. 908)

—बलिहारी कुदरत वसिआ ।।
तेरा अंतु न जाई लखिआ ।। रहाउ ।।
जाति महि जोति जोति महि जाता,
अकल कला भरपूरि रहिआ ।।
(वार आसा सलोक महला १, पृ. 469)

—सभ महि जोति, जोति है सोई ।
तिस कै चानणि, सभ महि चानणु होइ ।।
(धनासरी महला १, 663)

—पुड़ु धरती, पुड़ु पाणी, आसणु चारि कुंट चउबारा ।।
सगल भवण की मूरति ऐका, मुखि तेरै टकसाला ।१।
मेरे साहिबा तेरे चोज विडाणा ।
जलि थलि महीअलि भरपुरि लीणा,
आपे सरब समाणा ।।रहाउ।।

जह जह देखा तहि जोति तुमारी, तेरा रूपु किनेहा।
इकतु रूपि फिरहि परछंना, कोइ न किसही जेहा।२।
अंडज जेरज उतभुज सेतज, तेरे कीते जंता।
एकु पुरबु मै तेरा देखिआ, तू सभना माहि रवंता ॥
(सोरठि महला १. पृ. 596)

(iv) अकालपुरख किसी से भी नहीं डरता, भय रहित है :

—सगलिआं भउ लिखिआ सिरि लेखु।
नानक निरभउ निरंकारु सचु ऐकु।
(वार आसा महला १, पृ. 464)

—नानक निरभउ निरंकारु, होइ केते रामरवाल।
(वार आसा महला १, प. 464)

—ऐके कउ नाही भउ कोइ।
करता करे करावै सोइ ॥ (बिलावल महला १, पृ. 796)

(v) अकालपुरख निरवैर है :

—जुगि जुगि थापि, सदा निरवैर।
जनमि मरणि नही धंधा धैरु। (रामकली महला १. पृ. 931)

—निरभउ निरंकारु निरवैर पूरन जोति समाई।
(सोरठि महला १, पृ. 596)

(vi) अकालपुरख के अस्तित्व पर समय का कोई प्रभाव नहीं पड़ता-उसे मृत्यु नहीं आती तथा उसका अस्तित्व स्थाई है।

—आदि सचु, जुगाद सचु।
है भी सचु, नानक, होसी भी सचु। (जपुजी १)

—आदि अनीलु अनादि अनाहति, जुगु जुगु ऐको वेसु।
(जपुजी 7)

—तू अकालपुरखु, नाही सिरि काला।
(मारु महला १, पृ. 1038)

—असथिरु करता वेखीऐ, होरु केती आवै जाइ।
(सिरी राग, असटपदी महला १, पृ, 54)

—न ओहु मरै, न होवै सोगु।
(आसा महला १, चउपदे पृ. 349)

(vii) अकालपुरख अजूनी है, वह जन्म-मरण के चक्र में नहीं आता।

—न तिसु बापु न माइि, किनि तू जाइिआ ।
न तिसु रूप न रेख, वरन सबाइिआ ।
(बार मलार, पउड़ी महला १, पृ. 1279)

—जाति अजाति अजोनी संभउ, न तिसु भाउ न भरमा ।
(सोरठि महला १, पृ. 597)

(viii) अकालपुरख को किसी ने पैदा नहीं किया । उसका प्रकाश अपने आप से ही हुआ है ।

—थापिआ न जाइि, कीता न होइि ।
आपे आपि निरंजनु सोई । (जपु 2)

—आपीने आपु साजिओ, आपीनै रचिओ नाउ ।
(बार आसा पउड़ी, महला १-46)

—सचु सिरंदा सचा जाणीऐ सचड़ा परवदगारो ।
जिनि आपी नै आपु साजिआ, सचड़ा अलख अपारो ।
(दखणी वडहंस, महला १, पृ. 580)

(ix) अकालपुरख की प्राप्ति गुरु की कृपा द्वारा होती है । गुरु नानक साहिब ने यह बात बड़े स्पष्ट रुप में कही है कि प्रभु का प्राप्ति गुरु को शरण में आये बिना नहीं हो सकती :

—बिनु सतिगुर किनै न पाइिओ, बिन सतिगुर किनै न पाइिआ ।
सतिगुर विचि आपु रखिओनु, करि परगटु आखि सुणाइिआ ।
सतिगुरु मिलिऐ सदा मुकतु है, जिनि विचहु मोहु चुकाइआ ।
उतमु ऐहु बीचारु है, जिनि सचे सिउ चितु लाइिआ ।
जग जीवनु दाता पाइिआ । (वार, आसा महला १, पृ 466)

गुरु ही मनुष्य को प्रभु का मिलाप करवाता है :

—प्रभु हरिमंदरु सोहणा, तिसु महि माणक लाल ।
मोती हीरा निरमला, कंचन कोट रीसाल ।
बिनु पउड़ी गड़ि किउ चड़उ, गुर हरि धिआन निहाल । 2 ।
गुरु पउड़ी, बेड़ी गुरु, गुरु तुलहा हरिनाउ ।
गुरु सरु सागरु बोहिथो, गुरु तीरथु दरीआउ ।
जे तिसु भावे ऊजली, सतसरि नावणु जाउ ।
(सिरी राग महला १—पृ. 17)

—बिनु सतिगुर नामु न पाईऐ भाई,
बिनु नामै भरमु न जाई ।

सतिगुर सेवे ता सुखु पाऐ भाई, आवणु जाणु रहाई ।
साचु सहजु गुर ते ऊपजै भाई, मनु निरमलु साचि समाई ।
गुरु सोवे सो बूझै भाई, गुर बिनु मगु न पाई ।4।
(सोरठि महला १, पृ 635)

प्रभ की प्राप्ति केवल गुरु के 'दर्शन' से ही नहीं हो जाती, बल्कि गुरु की शिक्षा पर चलने से होती है । सतगुरु अपनी शिक्षा रुपी 'शब्द' के द्वारा खोटे, निकम्मे, निर्बुद्ध लोगों को निर्मल तथा उत्तम गुणों का धारणा बना देता है ।

—सतिगुरु खोटिअहु खरे करे, सबदि सवारणहार ।

(वार माझ महला १—पृ. 143)

—मति विचि रतन जवाहर मांणिक,
जे इक गुर की सिख सुणी । (जपुजी 2)

—गुर सबदि विगासी, सहु रावासी, फलु पाइिआ गुणकारी ।
नानक साचु मिलै वडिआई, पिर घरि सोहै नारी ।

(धनासरी महला १, पृ. 697)

—कुदरति देखि रहे मनु मानिआ ।
गुर सबदी सभु ब्रहमु पछानिआ ।
नानक आतमरामु सबाइआ,
गुरू सतिगुर अलखु लखाइआ । (मारु महला १, पृ. 1043)

—प्रभ बेअंत गुरमति को पावहि ।
गुर कै सबदि मन कउु समझावहि ।
सतगुर की बाणी सति सति करि मानहु,
इउ आतमरामै लीना हे । (मारु सोलहे, महला १, पृ. 1020)

गुरु का 'शब्द', गुरू की बाणी अथवा गुरू का ज्ञान ही प्रभु प्राप्ति का एकमात्र साधन है, इसलिए गुरू का 'शब्द' ही 'गुरू' होता है । गुरू के शब्द के अतिरिक्त संसार के लोग भटके हुए भ्रमित रहते हैं ; खराब होते है, परतु 'शब्द' के संग जुड़ कर ससार सागर से पार हो जाते हैं, अपना जीवन सफल कर लेते हैं । गुरवाक् है :

—सबदु गुर पीरा, गहिरा गंभीरा, बिनु सबदै जगु बउरानं।
पूरा बैरागी सहजि सुभागी, सचु नानक मनु मानं।
(राग सोरठि महला १, पृ. 635)

—पवन अरंभु सतिगुर मति वेला।
सबदु गुरू सुरति धुनि चेला।

(रामकली महला १, सिध गोसटि पृ. 843)

III. प्रभु का निर्गुण तथा सर्गुण स्वरूप : गुरू नानक देव जी के आगमन के समय प्रभु के बारे में दो विचार प्रचलित थे—कि प्रभु शरीर धारण करके देवताओं के रूप में इस संसार में आता है। इसी विचार के अधीन ही वेदों में देवताओं की स्तुति में मंत्र उच्चारित किये गये हैं। गीता में इस सिद्धांत पर विशेष बल दिया गया है। इसके विपरीत उपनिशदों में यह विचार भी दिया गया है कि प्रभु इस संसार से दूर है और उसका कोई शरीर नहीं है।

गुरू नानक देव जी ने प्रभु के दोनों स्वरूपों—निर्गुण तथा सर्गुण को माना है, परंतु पहले से प्रचलित अर्थों में नहीं, बल्कि इन्हें नवीन अर्थ दिये हैं।

सिख सतगुरू साहिबान ने इस बात पर बहुत बल दिया है कि प्रभु का कोई शरीर नहीं है उसे जन्म देने वाला, बनाने वाला और कोई नहीं है, और वह अवतार धारण नहीं करता है। हिंदुओं में श्री राम तथा कृष्ण की ईश्वर के अवतार के रूप में पूजा की जाती है परंतु गुरू नानक पातशाह इन भगवानों को अकालपुरख के सामने बहुत तुच्छ से जीवों के रूप में देखते हैं। यथा :

—पउणु उपाइ धरी सभ धरती,
जल अगनी का बंधु कीआ॥
अंधुलै दहसिरि मुंडु कटाइआ,
रावणु मारि किआ वडा भइआ॥
किआ उपमा तेरी आखी जाइ॥
तूं सरबे पूरि रहिआ लिव लाइ।१। रहाउ॥
जीअ उपाइ जुगति हथि कीनी ;
काली नथि किआ वडा भइआ।
किसु तू पुरखु, जोरू कउण कहीऐ
सरब निरंतरि रवि रहिआ।२।

नालि कुटंबु साथि वरदाता,
ब्रहमा भालण सृसटि गइआ।
अगे अंतु न पाइओ ता का,
कंसु छेदि किआ वडा भइआ। (आसा महला १, पृष्ट 350)

स्थाई अस्तित्व वाले प्रभु का ही सुमिरन करना चाहिए, जो अवतार जन्म-मरण, आवागमन में आते है वे तो स्वयं मृत्यु का शिकार हो जाते हैं तो औरों की रक्षा क्या करेंगे? यथा;

—नानक सचु धिआइनि सचु।
जो मरि जंमे सु कचु निकचु॥ (वार आसा पृ 463)
—देवी देवा पूजीऐ भाई, किआ मागउ, किआ देहि।
पाहणु नीरि पखालीऐ भाई, जलि महि बूडहि तेहि।
(सोरठि महला १, पृ. 6 7)

ईश्वर के सगुण स्वरूप, को गुरु जी ने बिलकुल नवीन अर्थों में प्रचारित किया है। गुरु जी के अनुसार सारी सृष्टि ही 'निर्गुण ब्रहम' का सर्गुण स्वरुप है। सभी जोव-जन्तु उसी का रूप ही तो हैं। धनासरी राग के एक शबद में प्रभु के निर्गुण तथा सर्गुण स्वरूप को बहुत अच्छी तरह प्रस्तुत किया गया है। अकालपुरख जन्म नहीं लेता—इसलिए उसका शरीर नहीं है—मुंह, हाथ, पैर, नाक, कान आदि नहीं हैं। यह उसका निर्गुण स्वरूप है। परंतु सभी जोवों में अकालपुरख की ज्योति (आत्मा) निवास करती है, इसलिए सभी जीवों के शरीर, मूल रूप में प्रभु के शरीर ही हैं। यह प्रभु का सर्गुण स्वरूप है। यथा:

सहस तव नैन, नन नैन हहि तोहि कउ,
सहस मूरति, नना ऐक तोही॥
सहस पद बिमल, नन ऐक पद,
गंध बिनु, सहस तव गंध इव चलत मोही।२।
सभ महि जोति, जोति है सोइ।
तिस कै चानिण, सभ महि चानणु होइ॥
(धनासरी महला १, पृ. 663)

IV. प्रभु से दूरी क्यों? : पहले यह बताया जा चुका है कि सच्चा सुख या शांति प्रभु के साथ जुड़ने से ही प्राप्त हो सकती है

और प्रभ के साथ एकमेव हो कर ही मनुष्य आदर्श व सफल जीवन व्यतीत कर सकता है। पर संसार में यह बात बड़े अचंभे वाली है कि अधिकतर पुरुष तथा स्त्रियां प्रभु से टूटे हुए हैं और कई तो प्रभु के अस्तित्व से इनकार किए बैठे हैं। इसका कारण है—माया। माया प्रभ द्वारा पैदा की हुई शक्ति है, जो संसार के इस खेल को चलाने के लिए आवश्यक है। माया का स्वभाव है लोगों को प्रभु से तोडकर संसार के नाशवान पदार्थों के साथ जोडना। प्रभमुखी मनुष्य संसार के पदार्थों में रहते हुए भी इन पदार्थों के रसों/भोगों में ग्रसित नहीं होता, जब कि प्रभु-प्रेम-हीन मनुष्य सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति को ही अपना जीवन उददेश्य समझता है। इनकी प्राप्ति व संभाल में लगा हुआ मनुष्य केवल अपने सुखों के साधन ही एकत्र करता हुआ झूठ, फरेब, धोखा, दूसरे का हक मारना, चोरी, स्मगलिंग, लूट-मार इत्यादि विकारों में अपना जीवन गंवा लेता है और इस संसार से कूच कर जाता है। यह सब माया का प्रभाव है। गुरु नानक पातशाह माया के प्रभाव का चित्रण इस प्रकार है :

—मनु भूला माइआ घरि जाइ।
कामि बिरुधउ रहै न ठाहि।
हरि भज प्राणी रसन रसाइ।3।
गैवर, हैवर, कंचन, सुत, नारी।
बहु चिंता पिड़ चालै हारी।
जूऐ खेलणु काचो सारी॥4॥

(गउड़ी गुआरेरी महला १, पृष्ठ 2?2)

—माइआ माइआ करि मुऐ, माइआ किसै न साथि।
हंसु चलै उठि डूमणो, माइआ भुली आथि।
मनु झूठा जमि जोहिआ, अवगुण चलहि नालि।
मन महि मनु उलटो मरै, जे गुण होवहि नालि।
मेरी मेरी करि मुऐ, विणु नावै दुखु भालि।
गढ़ मंदर महला कहा, जिउ बाजी दीबाणु।
नानक सचे नाम विणु झूठा आवणजाणु।
आपे चतुरु सरूप है, आपे जाणु सुजाणु।

(रामकली दखड़ी ओंकार—पृष्ठ 935, 36)

सतगुर जी कहते हैं कि माया के प्रभाव के अधीन मनुष्य सांसारिक पदार्थ एकत्र करते हुए, और इन पदार्थों के मोह, रस-कस आदि में बदमस्त हुआ अपना जीवन व्यर्थ गंवा लेता है। यथा :

दर घर महला सोहणे पके कोट हजार ॥
हसती घोड़े पाखरे, लसकर लख अपार ॥
किसही नालि न चलिआ, खपि खपि मुए असार ॥3॥
सुइना रुपा संचीऐ, मालु जालु जंजालु ॥
सभ जग महि दोही फेरीऐ, बिनु नावै सिरि कालु ॥
पिंडु पड़ै जीउ खेलसी, बदफैली किआ हालु ॥4॥
पुता देखि विगसीऐ, नारी सेज भतार ॥
चोआ चंदनु लाईऐ, कापड़ रूपु सीगारु ॥
खेहू खेह रलाईऐ, छोडि चलै घर बारु ॥5॥
महर मलूक कहाईऐ, राजा राउ कि खानु ॥
चउधरी राउ सदाईऐ, जलि बलीऐ अभिमान ॥
मनमुखि नामु विसारिआ, जिउ डवि दधा कानु ॥

(सिरी राग असटपदीआं 63)

V. माया के हथियार—पांच विकार : माया का प्रभाव मनुष्य में पाई जाने वाली पांच वृत्तियों के कारण होता है। धर्म की भाषा में इन को पांच विकार कहा जाता है। ये हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार। काम की रुचि मनुष्य को बुरे आचरण वाला बनाती है। कामी मनुष्य दूसरों का रूप देख-देख कर खुश होता है। दूसरों की मां-बहनों के साथ शारीरिक संबंध बनाने के लिए तत्पर रहता है। सिनेमा, ड्रामों, डांस आदि में दूसरों का रुप (नग्नता) देख-देख कर खुश होता है। धन, जायदाद, सांसारिक पदार्थों की अधिकता वाले लोग अहंकारी हो जाते हैं। अहंकार अथवा अभिमान में अकड़े हुए वे दूसरों को बहुत तुच्छ समझते हैं। ऐसे लोग ही निर्धनों को मनुष्य ही नहीं समझते, उनके साथ पशुओं जैसा व्यवहार करते हैं, जबर-अत्याचार करते हैं। कई बार "गुणवान" लोगों को अपने गुणों पर ही अहंकार हो जाता है। वे साधारण मनुष्यों को अपने से नीचा समझने लग जाते हैं। अहंकार की वृत्ति ही क्रोध को जन्म देती है। अहंकारी मनुष्य छोटी-छोटी बात पर गुस्से में आ जाते हैं। उन्हें अपने अवगुण दिखाई नहीं देते हैं, दूसरों को व्यर्थ कोसते रहते हैं। निर्धन, कमजोर व उन से कम ज्ञानवान लोग, उनके गुस्से का शिकार हुए रहते हैं। लोभ की वृत्ति मनुष्य में सांसारिक पदार्थों को अधिक से अधिक एकत्र करने की लालसा पैदा करती है। लोभी मनुष्य पराई वस्तुओं पर अपनी दृष्टि रखता है। पराई वस्तुओं को प्राप्त करने के

लिए रिश्वत, धोखा, हेरा-फेरी, ठगी, लूट मार आदि बुराइयों को अपनाता है। मोह की भावना मनुष्य में अपनी स्त्री, संतान, सांसारिक पदार्थों आदि के लिए अनावश्यक प्यार पैदा करती है। इतना प्यार कि इनके अस्तित्व में वह (मनुष्य) असीम खुशी महसूस करता है, पर जब कोई प्यारा चल बसे या धन जायदाद छिन जाय तो वही मनुष्य मारा-मारा फिरता है, धैर्य गंवा बैठता है, मानसिक संतुलन गंवा बैठता है और कई प्रकार के मानसिक व शारीरिक रोगों से ग्रस्त हो जाता है।

गुरु नानक साहिब पांच-विकारों की मार का वर्णन करते हुए कहते हैं कि यह मनुष्य पांच विकारों के शिकंजे में आया हुआ दुख भोगता है। प्रभु का नाम सुमिरन करने से, उसके नाम का जाप करने से, गुण गायन करने से ही उसका छुटकारा हो सकता है।

अवरि पंच हम ऐक जना, किउ राखउ घर बारु मना ।1
मारहि लूटहि नीत नीत, किसु आगै करी पुकार जना ।१।
सिरी राम नामा उचरु मना ।
आगै जम दलु बिखमु घना ।१।रहाउ।

(रागु गउड़ी चेती महला १, पृ 155)

विकारों के स्वभाव के बारे में सतगुरु साहिबान करते हैं :

—कामु क्रोधु काइआ कउ गालै ।
जिउ कंचन सोहागा ढालै ।

(रामकली दखणी, ओंकार पृ. 932)

—तूं सुणि हरणा कालिआ, की वाड़ीऐ राता राम ।
बिखु फलु मीठा चारि दिन, फिरि होवै ताता राम ।

(आसा महला १, पृ. 438)

VI. प्रभु से कृपा की याचना : माया के अलग-अलग रुपों के आक्रमणों तथा विकारों की मार से बचना इतना आसान नहीं है। माया और विकारों पर मनुष्य तभी विजय प्राप्त कर सकता है, यदि वह नित्य वाहिगुरू के पास विनतियां व अरदास करे कि वाहिगुरू उसको माया से लड़ने का बल प्रदान करे, सामर्थ्य प्रदान करे। प्रभु अथाह शक्ति का मालिक है, मनुष्य उससे शक्ति प्राप्त करके ही माया के आक्रमणों को पछाड़ सकता है।

पर आम तौर पर देखा गया है कि धर्म की राह पर चल कर जब कुछ लोग प्रसिद्धि प्राप्त कर लेते हैं, तो वे यह समझने लग जाते

हैं कि अपने यत्नों के बल पर ही उन्होंने आध्यात्मिक प्राप्तियां की हैं और विकारों आदि पर भी उन्होंने स्वयं ही विजय पाई है। मनुष्य का ऐसा सोचना उस में अहं की भावना को पैदा करता है। 'अहं" में मस्त मनुष्य अपने आप को ही सब कुछ समझता है, अहंकारी हो जाता है। ऐसा मनुष्य प्रभु की कृपा दृष्टि से रिक्त हो जाता है, उस में से शनैः शनैः सद्गुण समाप्त हो जाते हैं। वह देखने का (पाखण्ड पहरावे से) तो चाहे धर्मात्मा नजर आता है, पर वास्तव में वह धर्म-विहीन होता है। गुरु पातशाह जी कहते हैं कि ऐसे लोगों का प्रभु के संग मिलाप नहीं हो सकता है।

यथा :

हउमै करत भेखी नहीं जानिआ।
गुरमुखि भगति विरले मनु मानिआ।

(गउड़ी महला 1, पृ. 226)

अभिमान के अधीन रह कर मनुष्य दुख ही पाता है। यथा :

हउमै करतिआ नह सुखु होइ।
मनति झूठी, सचा सोइ।
सगल बिगूते भावै कोऐ।
सो कमावै धुरि लिखिआ होइ।१।

(गउड़ी अस्टपदी पृ. 222)

अभिमान को त्यागने से ही प्रभु प्रीतम के संग मिलाप हो सकता है। यथा :

हउमै जाई तां कंत समाई।
तउ कामणि पिआरे नव निधि पाई।

(सूही असटपदीआं महला १, पृ. 750)

यदि प्रभु कृपा दृष्टि करे तो वह मनुष्य की आतमा को विकार-रहित करके, अपने (परमातमा) जैसा बना लेता है। यथा:

—नदरि करे ता सिमरिआ जाइ।
आतमा द्रवै रहै लिव लाइ।
आतमा परातमा ऐको करै।
अंतर की दुबिधा अंतरि मरै। (धनासरी पृ. 661)

—सरबं साचा ऐकु है, दूजा नाही कोइ।
ता की सेवा सो करे, जा कउ नदरि करेइ।

(धनासरी महला १, पृ. 660)

—आपे भांडे साजिअनु, आपे पूरणु देइ ।
इकनी दुधु समाईऐ, इकि चुलै रहनि् चड़े ।
इकि निहाली पै सवनि् इकि उपरि रहनि खड़े ।
तिना सवारे नानका, जिन कउ नदरि करे ।
(आसा की वार, सलोक—पृ. 475)

किआ हंसु किआ बगुला, जा कउ नदरि करेइ ।
जो तिसु भावै नानका, कागहु हंसु करेइ ।
(सिरी राग महला १, पृ: 91)

होर कची मती कचु पिचु, अंधिआ अंधु बीचारु ।
नानक करमी बंदगी, नदरि लंघाऐ पारि ।
(सारंग की वार, सलोक महला १, पृ. 1242)

प्रभ की कृपा के पात्र बन कर, मनुष्य बलवान आत्मा के मालिक बन जाते हैं और प्रभ में विलीन हो जाते हैं । इन व्यक्तियों की अवस्था का वर्णन गुरू नानक देव जी ने, जपुजी में, "कर्म खंड" की पउड़ी में इस प्रकार किया है ।

करमखंड की बाणी जोरु ॥ तिथै होरु न कोई होरु ॥
तिथै जोध महाबल सूर ॥ तिन महि रामु रहिआ भरपूर ॥
तिथै सीतो सीता महिमा माहि ॥ ता के रूप न कथने जाहि ॥
ना ओहि मरहि न ठागे जाहि ॥ जिन कै रामु वसै मन माहि ॥
तिथै भगत वसहि के लोअ ॥ करहि अनंदु, सचा मनि सोइ ॥
(जपुजी—8)

VII. गुरु नानक का भक्ति मार्ग

उपरोक्त विचार से स्पष्ट हो जाता है कि प्रभु-प्राप्ति की राह गुरु से मालूम होती है । इस राह के यात्री का मुख्य कर्तव्य अपने मन में सुमिरन के द्वारा प्रभु से प्यार पैदा करना है, और ऐसा जीवन व्यतीत करना है, जिससे मन तथा आत्मा, पापों तथा विकारों को त्यागकर (प्रमात्मा की भांति) निर्मल हो जाय । ऐसे कार्य करने हैं जिनसे प्रभु प्रसन्न होता हो । यह सारी जीवन पद्धति गुर-शब्द की विचार से प्राप्त होती है ।

गुरू नानक पातशाह ने प्रभु-प्राप्ति की राह को पांच अवस्थाओं में बांटा है । ये पांच अवस्थाएं हैं—धर्म खण्ड, ज्ञान खण्ड, सरम खण्ड, कर्म खण्ड, तथा सच खण्ड, वास्तव में ऐसी पांच मानसिक अवस्थाऐं हैं जिनमें से होकर मनुष्य प्रभु के संग अभेदता प्राप्त कर लेता है ।

धर्मखण्ड में मनुष्यों को अपने कर्तव्यों की अनुभूति होती है। उसे पता चलता है कि धरती, धर्म की नेक कमाई करने का स्थान है। यहां पर किये गये काम का उचित फल मिलता है। जिन्होंने अच्छे कार्य किये होते हैं, वे प्रभु की कृपा के पात्र बनते हैं। ज्ञान खण्ड में अकाल पुरख की अनत कुदरत का नज़ारा आंखों के सामने आने लग पड़ता है। ज्ञान की आंधी आती है जिसके सम्मुख सभी प्रकार के वहम् भ्रम दूर हो जाते हैं। इससे आगे सरम खण्ड में मनुष्य को उद्यम करने की प्रेरणा दी गई है। मन का सांचा घड़ा जाता है। मनुष्य की सुरति, मन, बुद्धि. मति का विकास होता है। उसमें देवी गुण आ जाते हैं। प्रभु मनुष्य पर दया करता है. मनुष्य कर्म खण्ड में आ जाता है। अकालपुरख उसे बलवान बनाता है, विकार उससे दूर भागते हैं। उसका मन सदा प्रसन्नचित रहता है। अकालपुरख की कृपा का पात्र बनकर मनुष्य उसके सग एकमेव हो जाता है—यह सचखण्ड की अवस्था है। इस, सब से ऊंची अवस्था का ज़िक्र आंखों द्वारा नहीं किया जा सकता।

VII. प्राचीन धार्मिक विश्वासों के बारे में सतगुरु साहिबान की राय

सतगुरू साहिबान के सक्षप जीवन तथा 'विचारधारा' के दर्शाये गये उपर्युक्त पक्षों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सतगुरु साहिबान देवी-देवताओं तथा प्राकृति की शक्तियों की पूजा के बिल्कुल विरुद्ध थे। आपने केवल एक अकालपुरख मे विश्वास तथा श्रद्धा रखने तथा उसकी पूजा (नाम सुमिरन) का उपदेश दिया। धार्मिक पाखण्डों के स्थान पर सदाचारी जीवन पर बल दिया। तीर्थों की यात्रा, तीर्थ-स्नान, शरीर को कष्ट देने वाले तपों, योगियों तथा जैनियों की साधनाओं, अनेक प्रकार के पुण्य दान, संसार से भागने, जगल में निवास करने. ब्रह्मचारी रहने, यज्ञ आदि करने, बलि देना आदि कथित धार्मिक आडंबरों तथा कर्म-कांडों का सख्त विरोध किया। हां, आत्मा के अस्तित्व, आवागमन, पुनर्जन्म कर्म-सिद्धांत तथा मुक्ति के सिद्धांत को अवश्य स्वीकार किया है—परंतु वह भी अपने नवीन अर्थों में पूर्व प्रचलित विचारों के अनुसार कर्म 'नास' नहीं थे हो सकते परंतु गुरु जी ने कहा कि यदि मनुष्य पापों से तोबा कर ले और गुरु जी द्वारा बताई राह पर चल पड़े तो उसे पहले किये गये दुश्कर्मों के प्रभाव से मुक्ति प्राप्त हो सकती है। पहले यह विचार प्रचलित था कि 'मुक्ति' केवल मृत्यु के पश्चात प्राप्त हो सकती है, सतगुरु सहिबान ने 'जीवन मुक्त' का सिद्धांत दिया। इसी जीवन में विकार-रहित हो

कर प्रभु के संग एकामुर हो जाना ही जीवन मुक्ति है। आपने स्वर्ग तथा नर्क को कतई महत्व नहीं दिया। आपने लोगों को स्वर्गों के तथाकथित सुखों तथा नर्कों के भयंकर कष्टों के विचार से मोड़कर, प्रभु के चरण-कमलों' की मौज'' प्रभु प्रीति का स्वाद चखाया।

अंत में हम कह सकते हैं कि गुरु नानक का धर्म बहुत सरल तथा हर समय, हर स्थान पर अपनाये जाने योग्य धर्म है। नाम का जाप करना, धर्म की नेक कमाई करनी, बांट कर खाना—इस धर्म की विचारधारा के मूल आधार है।

(ख) सामाजिक विचारधारा

इस पुस्तक के आरंभ में 'गुरु नानक आगमन समय की धार्मिक दशा' के बारे में विचार की गई है। इसमें यह भी बताने का यत्न किया गया है कि गुरु साहिब कैसे समाज की सृजना करना चाहते थे। यहां उन सभी विचारों को दोहराना उचित प्रतीत नहीं होता है। नीचे सतगुरु साहिबान की सामाजिक विचारधारा के मुख्य अंगों का वर्णन किया जाता है।

(i) सभी मनुष्य बराबर हैं : गुरु नानक साहिब ने इस बात पर बहुत बल दिया है कि सारे प्राणी प्रभु की संतान होने के कारण आपस में भाई-भाई हैं। मनुष्य जाति को देश, नस्ल, रंग भाषा आजीविका के लिए अपनाये गये कारोबार के अनुसार नहीं बांटा जा सकता है। इसीलिए सतगुरु साहिबान ने भारतीय समाज की ब्राहमणी वरण-भेद की नीति का जोरदार शब्दों में खण्डन किया है और नीच कहे जाने वाले शूद्रों के संग संबंध जोड़े। वरन, जातियां, उपजातियों में बंटे हुए लोगों में से नफरत खत्म करने के लिए सतगुरु साहिबान ने 'लंगर' की प्रथा आरंभ की। इसके बाद के गुरु साहिबान ने सरोवरों का निर्माण भी इसी ध्येय की पूर्ति के लिए किया कि ब्राहमण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र एक ही ताल में से स्नान करें ताकि समाज को छूत-छात तथा ऊंच नीच के क्षय रोग से मुक्त किया जा सके।

(ii) निर्भयता तथा निरवैरता का उपदेश भारतीय समाज मुगलों की गुलामी के कारण अपनी सभ्यता से दूर जा रहा था। अपने धर्म, धर्म मंदिरों, देवी-देवताओं की हो रही दुर्गति को लाचार हो कर देख रहा था—परंतु अत्याचार ज़बर के विरुद्ध बोल भी नहीं सकता था। सतगुरु साहिबान ने 'शूरवीरों' को ललकारा। लोगों को निर्भय होकर अत्याचारों का सामना करने की प्ररणा दी। भिन्न भिन्न सप्रदायों

को आपस में भिड़कर मरने से रोका, न डरो और न डराओ—के सिद्धांत को प्रचारित किया।

(iii) रिश्वत, भ्रष्टाचार तथा सामाजिक दशा : आप चाहते थे कि मनुष्य का आचरण सत्य' पर आधारित हो। कोई किसी का हक न मारें, अदालतें न्याय करें। जज भी पैसे लेकर अपने निर्णय न बदलें ओर निर्दोषा को दोशो न ठहरायें।

(iv) स्त्री पुरुष के संबंध : स्त्री, पुरुष, जीवन को गाड़ी के दो पहिये है। दोनों में एक दूसरे के लिए दुःख सहन करने तथा कुर्बानी करने का मादा होना चाहिए। पुरुष, स्त्री को केवल शारीरिक भूख मिटाने का साधन ही न समझे। दूसरी ओर स्त्री को भी केवल पुरुष के रुपये पैसे से ही प्रेम नहीं होना चाहिए।

v) स्त्री का समाज में सम्मानित स्थान होना चाहिए : शास्त्रों, समृतियों तथा योग मत के सिखाये हुए लोग स्त्री से घृणा करते थे। आज भी स्त्री जनेऊ संस्कार करवा कर 'हिंदू धर्म में विधि पूर्वक प्रवेश नहीं कर सकती। मुसलमान स्त्री अभी भी मस्जिद में उपदेश नहीं दे सकती। आज का सभ्य समाज भी स्त्री को काम तृप्ति का साधन समझता है। गुरु जी का विचार है कि भक्तों, शूरवीरों, राजा-महाराजाओं की जननी होने के नाते स्त्री मनुष्य के समान सम्मान की पात्र है। स्त्री का धर्म-कर्म की पूर्ण स्वतंत्रता है। ऐसे विचारों के फलस्वरूप ही आज सिख स्त्रियां, सिख पुरुषों की भांति अमृतपान करके सिंघणियां सज जाती हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के साथ बराबर के हिस्सेदार की भांति कर्तव्य निभाती हैं। सिख स्त्रियां गुरद्वारों में धर्म-प्रचारक के तौर पर सेवा निभाती हैं।

vi रुपए-पैसे का समान वितरण : जिस समाज में रुपये-पैसे का समान वितरण नहीं होता वह समाज हमेशा गरीबी, बीमारी, भूख, वहम-भ्रम आदि की लाहनत से भरपूर रहता है; या फिर लड़ाई-झगड़ों में पड़ा रहता है। सतगुरु साहिबान एक ऐसे समाज का सृजन करना चाहते थे जिसमें न तो कुछ लोगों के पास बहुत धन ही हो और न ही लोग धन की कमी के कारण पशुओं की भांति जीवन व्यतीत करें और सारी उम्र, रोटी, कपड़ा और मकान की प्राप्ति के चक्करों में ही जीवन नष्ट कर लें।

गुरु नानक पातशाह ने अपने पांचवे शरीर, गुरु अर्जुन देव के रूप में कहा था :

जिसु गृहि बहुतु तिसै गृहि चिंता ॥
जिसु गृहि थोरी सु फिरै भ्रमंता ॥
दुहू बिवसथा ते जो मुकता, सोई सुहेला भालीऐ ॥
(मारु महला 5, घर 8, अंजुलीआ पृ. 1019)

गुरु नानक देव जी ने लोगों को उपदेश दिया कि धन एकत्र करने में ही जीवन व्यर्थ न गंवाओ। अधिक धन तो झूठ बोलकर, हेरा फेरियाँ करके तथा दूसरों का हक मारकर ही एकत्र किया जा सकता है। जिस धन के एकत्र करने में इतने पाप करने पड़ते हैं, वह धन मृत्यु के समय व्यक्ति के साथ नहीं जाता है।

इसु जर कारणि धनी विगुती, इनि जर घणी खुआई ॥
पापा बाझहु होवै नहीं, मुइआ साथि न जाई ॥
(आसा महला १, पृ. 417)

दुनियाँ में बहुत से लोग दूसरों का अधिकार छीन कर धनवान बनते हैं। परन्तु दूसरों का अधिकार छीनने वाला मनुष्य धर्मात्मा नहीं हो सकता। सतगुरु साहिबान का कथन है;

हकु पराइआ नानका, उसु सूअरु उसु गाइ ॥
गुरु पीरु हामा ता भरे, जा मुरदार न खाइ ॥
(सलोक महला १, वार माझ, पृ. 141)

जे रतु लगै कपड़ै, जामा होइ पलीतु।
जो रतु पीवहि माणसा, तिन किउ निरमलु चीतु।
नानक नाउ खुदाइ का, दिलि हछै मुखि लेहु।
अवरि दिवाजे दुनी के, झूठे अमल करेहु।
(महला १, माझ की वार पृ. 140)

उपर्युक्त गुरु-वाक्यों से स्पष्ट है कि समाज मे लूट-मार नहीं होनी चाहिए, न ही कमजोर लोगों का हक मारा जाना चाहिए। वही समाज खुशियों व आनंद से परिपूर्ण हो सकता है जिसमें न तो कुछ ही लोग बहुत अमीर हों और न ही उसमें निर्धनता का बोल-बाला हो।

VII. साध-संगत और सेवा : साध संगत एक ऐसा स्थान है जहां धर्म की शिक्षाओं को व्यवहारिक रूप देने की प्रेरणा मिलती है। सत-संगिओं के दुख सुख साझे होते हैं; जरूरतमंदों की आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है और धर्म को युगों-युगांतरों तक जीवित रखने की योजनायें बनाई जाती हैं।

साध संगत में जाने का मुख्य प्रयोजन तो प्रभु को स्तुति करना तथा अपने धर्म के विश्वासों के संग जुड़े रहना है। इसके साथ ही मानवीय समाज की भलाई को प्रेरणा भी साध संगत से हो मिलती है। गुरू महाराज जहां मनुष्य की निजी मुक्ति के चाहवान थे; वहाँ मनुष्य को भाइयों को तरह एक-दूसरे के दुःख सुख का साझीदार होने की भी प्रेरणा देते हैं। आप संगत के द्वारा एक आदर्श समाज का निर्माण करना चाहते थे। जहां लोग पहले प्रभु को पूजा के लिए दुनियां से दूर भागते थे, जंगलां पहाड़ां तथा नदियों के किनारों पर जाकर प्रभु में अपना ध्यान जोड़ते थे, वहीं सतगुरु साहिबान ने सतसगत में आकर नाम सुमिरन करने की प्रेरणा दी। गुरु नानक पातशाह ने 'संगत' के रूप में 'धर्म का प्रशिक्षण देने वाले केंद्रों' की स्थापना की थो। अपने प्रचारक दौरों (उदासियों) के समय आपने जहाँ भी संगतों को स्थापना को, वहां साथ में एक प्रचारक भो अवश्य ही नियुक्त किया, जिसका कार्य 'संगत' को गुरु नानक पात-शाह के विचारों तथा शिक्षाओं से जोड़े रखना था।

इस 'संगत' में ही मनुष्य में सेवा की भावना उत्पन्न करके, उसे सेवा का क्रियात्यक प्रशिक्षण दिया जाता था। लोग तन, मन. धन से सेवा करते थे। 'संगत' में ही यह उपदेश मिलता था :

—विचि दुनिया सेव कमाईऐ ॥
ता दरगह बैसणु पाईऐ (सारी राग असटपदी 26)

...घालि खाइ किछु हथहु देहि।
नानक राह पछाणहि सेहि ॥

(सारंग की वार महला।, पृ. 1245)

संगत में सभी वरणों, संप्रदायों, धर्मों के लोग एकत्र होकर बैठते थे, इकट्ठे ही लंगर सेवन करते थे, और सरोवरों में इकट्ठे हो स्नान करते थे। इस प्रकार 'सगतों' ने व्यक्ति-व्यक्ति में पड़ी दरारों को दूर करके एक आदर्श समाज के निर्माण में हिस्सा पाया।

इस 'संगत' में ही धर्म पर दृढ़ रहने, स्वतत्रता तथा स्वाभिमान से जीने तथा अत्याचार का सामना करने की शिक्षा मिलती थी। मनुष्य की भलाई की खातिर और धर्म हेतु हज़ारों ही लोगों द्वारा बोटी-बोटी करवाने वाले, आरों से शरीर चिरवाने वाले, देगों में उबलने को तत्पर रहने वाले, खोपड़ियाँ उतरवाने वाले, चरखड़ियों पर चढ़ कर कीमा-कीमा होने वाले, जिंदा ही आग में जल जाने

वाले, नीवों में चिन जाने वाले तथा अनेक प्रकार के कष्ट सहन करके शहीदी प्राप्त करने वाले जवान मर्द तथा अपने मासूम बच्चों को आँखों के सामने शहीद होता देखने वाली तथा अपने गले में बच्चों की अंतड़ियों के हार डाले जाने पर भी हिमालय की भांति अडोल रहने वाली सिंघणियां—सब इसी 'संगत' नामी संगठनों की देन हैं।

अतः 'संगत' एक सुव्यवस्थित तथा जीवन के ऊँचे मूल्यों वाले समाज की निर्माता है और इन ऊँचे मूल्यों की रक्षक है।

सारांश में हम यह कह सकते हैं कि सतगुरु साहिबान का आशय एक ऐसे समाज का निर्माण करना था, जिस में व्यक्ति-व्यक्ति में बटवारे न हों बल्कि सारे मनुष्य, सगे भाइयों की भांति एक दूसरे के लिए प्यार तथा हमदर्दी की भावना रखने हों। मनुष्य स्वयं ही परिश्रम द्वारा नेक कमाई करे, तथा अपने साथ के जरुरतमंदों की आवश्यकताओं की भी पूर्ति करे, लोग ऊँचे तथा निर्मल जीवन मूल्यों के धारणी हों, सेवा भावना वाले हों। रूपये पैसे की लूट-मार न हो, बल्कि मानव मात्र का ध्येय सर्वजनहिताय का हो।

(ग) राजनीतिक विचारधारा

अच्छा राजा या उत्तम प्रकार की राज्य प्रणाली वही हो सकती है जो अपनी प्रजा की भलाई तथा सुख-सुविधा का ख्याल रखे। परंतु इतिहास इस बात का गवाह है कि राज्य-शक्ति के नशे में चूर राज्याध्यक्ष अपने लिए अपने परिवार के लिए या कुछ पिट्ठुओं की भलाई के लिए तो बहुत कुछ करते रहे हैं, परंतु अपनी प्रजा की भलाई की ओर उन्होंने कम ही ध्यान दिया है। राजा लोग अपने लिए सुख तथा ऐशो-आराम के सामान एकत्र करने में ही व्यस्त रहते थे, जिसके फलस्वरूप जनता में गरीबी, भूख तथा बीमारियां फैलती रही हैं। वर्तमान समय में भी जिस पार्टी का राज्य स्थापित हो जाता है, वह हर प्रकार से लोगों पर अपनी राजनीतिक विचारधारा थोपने का यत्न करती है। विरोधियों को समाप्त करने के लिये चालें चलती है, लोगों को उनकी भलाई के भ्रम में डालकर अपने राज्य की जड़ों को पक्का करती है। यह तो है अपने-आपको 'लोकतंत्रीय' सरकार कहने वाली सरकारों का हाल। जहां तानाशाह राज्य कर रहे हैं या कम्यूनिस्ट सरकारें हैं वहां विरोधी पार्टी तो होती ही नहीं। ऐसी सरकारें राज्य प्राप्त करते ही विरोधियों का सफाया कर देती हैं।

लोगों में भय-सहम उत्पन्न करके राज्य करती हैं। यदि कोई बद्धिजीवी लोगों को जागृत करने की कोशिश करता है तो उसे या तो जेलों में फेंक दिया जाता है या फिर देश में से ही बाहर निकाल दिया जाता है। तानाशाह या सरकार चलाने वाली पार्टी के कुछ व्यक्ति सांसारिक सखों के असीम साधनों के मालिक बन जाते हैं. और प्रजा भूख. गरीबी तथा भय के दैत्य रुपी पहियों के नीचे कुचली जाती है। यदि किसी देश में लोगों के लिए रोटी, कपड़ा और मकान का प्रबंध किया भी जाता है तो लोगों को काम चला रही पार्टी के बारे में अपने व्यक्तिगत विचार प्रकट नहीं करने दिये जाते हैं, लोगों की धार्मिक तथा सांस्कृतिक सरगर्मियों पर भी प्रतिबध लगाए जाते हैं। लोग किसान के बैलों की भांति बन कर रह जाते हैं; जिनका काम मालिक के खेतों में हल चलाना होता है, मालिक की प्रत्येक इच्छा का पालन करना होता है। ज़ुबान तो वे खोल ही नहीं सकते। यदि ज़रा सी भी मनमानी करें तो चाबुकों की मार सहन करते हैं। हां, उन्हें खाने-पीने का सामान (वह भी जिसे मालिक ठीक समझे) और सिर छिपाने योग्य स्थान अवश्य मिल जाता है।

आश्चर्य की बात यह है कि हर प्रकार की राज्य सरकारें लोकतंत्रीय तानाशाही तथा समाजवादी—अपना ध्येय जनता की भलाई ही बताती हैं।

गुरु नानक पातशाह हर उस राज्य प्रबंध के विरुद्ध थे जो आवश्यकता से अधिक टैक्स लगाकर या अन्य कई प्रकार से जनता से धन पदार्थ लूटते थे और उन पर ज़ोर-जबर्दस्ती से अपने धार्मिक विचार थोपते थे, मनुष्य की स्वतंत्रता का गला घोंटते थे। यदि धन पदार्थ लूटने के लिए बाहर से बाबर आया तो उसे 'पाप दी जंझ' लेकर आने वाला तथा जबरदस्ती दान मांगने वाला (लूटमार करने वाला) कहा। यहां के एशप्रस्त राजाओं को बड़े स्पष्ट शब्दों में रंग तमाशों में व्यस्त, जनता का लहू चूसने वाले भेड़िये, कुत्ते, कसाई .. आदि कड़े शब्दों से संबोधित किया। गुरु नानक पातशाह राजाओं तथा राज्य सरकारों का सबसे बड़ा गुण न्यायकारी होना मानते हैं। आपका कथन है :

नानक चुलीआ सुचीआ, जे भरि जाणै कोइ ॥
सुरतु चुली गिआन की, जोगी का जतु होइ ॥
ब्रहमण चुली संतोख की, गिरही का सतु दानु ।

राजे चली निआव की, पड़िआ सच धिआनु ॥

(सारंग महला १ पृ. 1240)

गुरु जी कहते हैं कि राज-गद्दी पर बैठने का अधिकार उसे है जो इसके योग्य हो, भाव न्यायकारी तथा जन-कल्याणकारी राज्य चला सकता हो। यथा :

तखति बहै तखतै की लाइक ॥

(मारु सोलहे, महला १, पृ. 1039)

राजा के लिए गुणवान होना तथा प्रभु के भय में रहना आवश्यक है। प्रभु के भय में रहने वाला राजा ही प्रभु की प्रजा की सच्चे दिल से सेवा कर सकता है।

राजा तखति टिकै गुणी, भै पंचाइिण रतु ॥

(मारु महला १, पृ. 992)

ये हैं गुरु नानक पातशाह के राज्य प्रबंध के बारे में कुछ विचार। आपके कथनानुसार वही राज्य-प्रणाली ठीक है, जो जन-कल्याणकारी हो, न्यायकारी हो और जिसे चलाने वाले शासक बुद्धिमान तथा प्रभु के भय में रहने वाले हों।

□

"नानक निर्मल पंथ चलाया" 13.

पिछले अध्यायों में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जो विचार-धारा गुरु नानक पातशाह ने संसार को दी थी, उसका मनोरथ मनुष्य को एक सुन्दर जीवन मार्ग अर्थात जीवन पद्धति सिखाना था। सतगुरु साहिबान ने धर्म को अनावश्यक कर्म-कांडों की कैद से मुक्त करके दर्शन (फलसफे) के भंवर में से निकालकर, सीधा स्पष्ट जीवन मार्ग बना दिया। अपनी मौलिक तथा अद्वितीय विचारधारा के प्रचार के लिए सतगुरु साहिबान ने लम्बे-लम्बे प्रचारक दौरे लगाए। लोगों की बोली में अपने धर्म सिद्धान्तों को प्रचारित किया। इन सिद्धान्तों के प्रभाव को चिरस्थायी बनाने के लिए संगतें कायम कीं और प्रचारकों की नियुक्तियाँ कीं। सतगुरु साहिबान के इन प्रयासों के फलस्वरूप एक नया धर्म अस्तित्व में आ गया। उनकी विचारधारा का सिक्का दुनियां ने मान लिया। इसलिए तो भाई गुरदास जी कहते हैं :

मारिआ सिका जगत विच,
नानक निरमल पंथ चलाइआ ।। (वार १ पउड़ी 45)

भाई गुरुदास जी ने इस निर्मल पंथ को "गुरमुख पंथ" तथा "गुरमत गाडो राह" भी कहा है। भाई गुरदास जी की गवाही से ही यह पता चलता है कि सतगुरु जी अपने धर्म की दीक्षा देते समय लोगों को चरण पाहुल (चरणामृत) दिया करते थे।

सुणी पुकार दातार प्रभु, गुरु नानक जग माहि पठाया ।।
चरण धोइ रहिरास कर, चरनामृत सिखां पीलाया ।।
(वार १, पउड़ी 2्)

सतगुरु साहिबान के जीवन काल में ही सिखी भारत के कोने-कोने में तथा सभी क्षेत्रों में फैल गयी थी जहां-जहां पर सतगुरु जा प्रचार करने गये थे। इस बारे में मिर्जा गुलाम अहमद कादीआं लिखते हैं :

"गुरु नानक वास्तव में हो चुके पैगंबरों से कई बातों में बहुत बड़े थे जैसे कि उस समय, जब कि यातायात के साधन—रेल, हवाई जहाज आदि नहीं थे, प्रेस तथा प्लेटफार्म के द्वारा प्रचार करने के तरीके ईजाद नहीं हुए थे तथा रेडियो, लाउडस्पीकर आदि नवीन आविष्कार आदि नहीं हुए थे, गुरु नानक साहिब ने सारे हिन्द में ही नहीं एशिया यूरोप तथा अफ्रीका के विशेष क्षेत्रों में प्रचार करके लगभग तीन करोड़ श्रद्धालुओं को गुरदीक्षा दे कर सत्य-धर्म के मार्ग पर चलाया ।"

तब से लेकर आज तक यह धर्म साधारण व्यक्तियों से लेकर बड़े बड़े बुद्धिवानों तथा विचारकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता रहा है। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत हो रहा है, यह धर्म लोगों में और अधिक हरमन प्यारा हो रहा है। संसार के प्रसिद्ध विचारवान, इसे जगत धर्म मान रहे हैं और आने वाले समय मे मानवता की अगवाई करने वाले तीन चार धर्मों में इसकी गणना कर रहे हैं। श्री सी० एच० पैन्न ने इस धर्म को जनसाधारण का धर्म कहा है।

"व्यावहारिक धर्म गुरु नानक देव जी ने दर्शाया। उन्होंने मुसलमानों, हिन्दुओं, किसानों, दुकानदारों, सिपाहियों, गृहस्थियों को उनके (लोगों) अपने कारोबार करते हुए कामयाबी प्राप्त करने का रास्ता बताया। गुरु नानक फोकी फिलासफियों, रस्मों, रिवाजों, जातियों से ऊंचा उठे तथा लोगों को उठाया।"

"गुरु नानक ने वह बात समझ ली थी जो दूसरे सुधारकों ने नहीं समझी थी। धर्म वही जिंदा रह सकता है, जो व्यवहार सिखाये जो यह न सिखाये कि दुनियां सें कैसे भागना है, बल्कि यह सिखाये कि दुनियां में अच्छी तरह कैसे रहना है, जो केवल यह ही न सिखाये कि बदी से कैसे बचना है, बल्कि यह सिखलाये कि बदी का टाकरा करके कैसे कामयाब होना है।"

(शार्ट हिस्टरी आफ दा सिख्ज, पृ. 31)

डंकन ग्रीनलीज गुरु नानक के धर्म को सुन्दर जीवन पद्धति का नाम देता है।

"हम गुरु नानक साहिब के ऋणी हैं जिन्होंने लोगों को बताया कि सिख धर्म एक सुंदर जवन पद्धति है और आदर्श भ्रातृत्व का नाम है. जिस पर प्रभु भक्ति की सच्ची स्थायी कली चढ़ी हुई है और गुरु साहिब ने स्वयं इस जीवन मार्ग पर चल कर दिखाया है।

(दॉ गोसपाल आफ गुरु ग्रंथ साहिब)

संसार के पांच सौ भिन्न-भिन्न धर्मों का अध्ययन करने वाला अमरीका का विद्वान एच. एल. ब्रॉडशा सिख धर्म को आज के मनुष्य का धर्म तथा उसकी सभी उलझनों का सही हल दर्शाता है। डॉ. ब्रॉडशा ने अपना यह लम्बा-सा लेख "सिख रिव्यू' (अंग्रजी) कलकत्ता मे छपवाया था. और बाद में यह अन्य कई पत्रिकाओं म छप चुका है आप लिखते है :

"सिखी एक सर्व-व्यापक अथवा सपूर्ण जगत का धर्म है तथा मानव मात्र को समान संदेश देता है। इस बात की, गुरबाणी में खब व्याख्या की गयी है। सिखों को यह सोचना बंद कर देना चाहिए कि सिखी एक और अच्छा धर्म है। बल्कि इसके उलट इस प्रकार सोचना चाहिए कि सिखी ही नवीन युग का धर्म है। यह पूर्ण तौर पर पुराने मतों का स्थान लेता है। इस बात को सिद्ध करने के लिए पुस्तकें लिखने की सख्त आवश्यकता है। दूसरे मत सच्चाई रखते हैं, परंतु सिख मत में भरपूर सच्चाई है।......

'सत्य यह है कि सिख धर्म वर्तमान मानव की उलझनों तथा प्रश्नों का सही उत्तर है।"

विद्वान लोग इस बात को भी मानते हैं कि गुरु नानक पातशाह के विचारों ने एक नवीन कौम को जन्म दिया। 'कनिंघम' अपनी पुस्तक "ए हिस्टरी ऑफ दा सिख्ज" में लिखता है :

"गुरु नानक ने अपने सिखों को उन गल्तियों से बचा लिया जिनका भारतवासी सदियों से शिकार होते आ रहे हैं। गुरु साहिब ने सिखों को एक अकाल पुरख की उपासना तथा पवित्र आचरण की शिक्षा दी तथा इस प्रकार अपने सरल, स्पष्ट, स्वतंत्र, समदृष्टि वाला तथा रीति रस्मों तथा स्वतंत्र श्रद्धालुओं का सुन्दर पंथ सजा गये।"

संसार प्रसिद्ध साहित्यकार मिस पर्ल एस. बक लिखती हैं :

पंजाब में गुरु नानक ने दस शरीरों में कड़े परिश्रम द्वारा बहादुर तथा स्वाभिमानी कौम की सृजना की तथा मनुष्यों तथा स्त्रियों को यह बताया कि ईश्वर को एक दोस्त की भांति कैसे प्यार करना है। किस प्रकार ऊपर उठना है, स्वाभिमान कायम रखना है। जमीन पर गिरकर या धरती का भार बन कर नहीं रहना है। यह रूह थी जो उन्होंने सिखों में भरी तथा इसके फलस्वरूप सारे उत्तरी भारत के समाज का चित्र ही बदल गया।"

डा. राधाकृष्णन ने भी अपने एक भाषण में लिखा है :

"गुरु नानक ने एक ऐसी कौम बनाने का यत्न किया, जिसमें मर्द-स्त्रियों में स्वैमान तथा स्वाभिमान हो, परमात्मा तथा उसके भक्तों के लिए श्रद्धा हो तथा उनमें भ्रातृभाव तथा सहअस्तित्व की भावना हो।"

अत: गुरू नानक पातशाह ने एक नवीन कौम के बीज बीजे तथा दशम पातशाह ने इस कौम को सम्पूर्णता प्रदान की। इस सम्बन्ध में कनिंघम लिखता है :

"यह गुरु नानक के ही हिस्से आया था कि वह ऐसे मुख्य सिद्धांत अपनाएं जिनके द्वारा नीच-ऊंच, जाति-पात की भिन्नताओं का अंत हो जाये। उनके मुख्य सिद्धांतों पर ही गुरु गोबिन्द सिंघ जी ने ऐसी कौम तैयार की जो नीचे ऊंचे का भेद मिटाकर, सबको एक स्तर, चाहे वह धार्मिक ही था या राजनीतिक, पर ले आयी।"

डा. गोकल चंद नारंग ने बहुत खूब लिखा है : "खालसा पंथ उस उन्नति का परिणाम था जो आरंभ से होती आयी थी। जिस फसल ने गुरु गोबिन्द सिंघ जी के समय फल दिया उसकी बुवाई गुरु नानक देव जी ने की थी और आठ गुरूओं ने उसको सींचा था।

जिस तेग़ ने खालसे की शान फैलाई थी—यह ठीक है कि उसे तैयार गुरू गोबिन्द सिंघ जी ने किया था, परंतु फौलाद (जिससे वह तेग़ तैयार हुई) गुरू नानक देव जी कमा कर दे गये थे।"

लाला दौलत राय आर्य ने भी कुछ इसी प्रकार के विचार प्रकट किये हैं। आप अपनी पुस्तक "स्वाने उमरी गुरू गोन्बिद सिंघ" के पृष्ट. 38 पर लिखते हैं :

"जिस दरख़त को गुरू नानक देव जी ने अपने खून का पानी और हड्डियों का खाद देकर जमीन से उठाया था, जिसको गुरू तेग बहादुर जी ने अपने खून से सींच कर ज़रा बढ़ाया था, उसको गुरू गोबिंद सिंघ जी ने अपने चार बेटों और हज़ारों अक़ीदतमंद सिघों के खून के लबालब हुनरों से ऐसा बलवान चढ़ाया कि आखर वोह फल लाया। वोह फल क्या थे ? कौमीअत, अखवत, वाअदत और मुहब्बत, यानि ऐसा फल जिसका पोस्त वाहदति इलाही, जिसके रेशे मुहब्बत, जिसके परदे हबुलवतनी, जिसकी गिटक अखवत और जिसका शीरीं रस कौमीअत थी।"

डा. गोकल चन्द नारंग तथा लाला दौलत राय जी आर्या के उपरोक्त विचारों को यदि ऐतिहासिक तथ्यों के साथ मिला कर देखें तो यह शत-प्रतिशत सही प्रतीत होते हैं।

गुरू नानक साहिब ने जिस "निर्मल पंथ" की नींव रखी थी, उसे और मजबूत बनाने के लिए, उनके पश्चात सभी गुरू साहिबान, विशेष तौर पर यत्नशील रहे हैं। गुरू अंगद साहिब ने लंगर की मर्यादा को और मजबूत किया। आपन पंजाबी बोली का प्रचार किया, गुरमुखी लिपि का सुधार किया और बच्चों के लिए कायदे लिखवाये। सिखों को शारीरिक तौर पर स्वस्थ तथा बलवान बनान के लिए मल्ल-अखाड़े कायम किये। तीसरे पातशाह श्री गुरू अमर दास जी ने गुरमत के प्रचार के लिए सारे देश में "मंजीयां" (उप-प्रचार केन्द्र) तथा पीहड़े (प्रचार केन्द्र) स्थापित किये जो प्रचार के केन्द्र तथा उप-केन्द्र थे। गुरू रामदास पातशाह न मसंद प्रथा चालू की। मसंदों का काम अलग-अलग क्षत्रों की संगतों को गुरू घर के साथ जोड़े रखना था। वे जहां धर्म-प्रचार करते थे और कार-भेंट इकट्ठी करते थे, वहीं उस क्षेत्र की संगत की रिपोर्ट (सिखी का प्रचार कैसे हो रहा है, कितना विस्तार हुआ है, कौन-कौन से गुरसिख

विशेष तौर पर कौमी सेवा में लगे हुए हैं, आदि का विवरण) गुरू दरबार में प्रस्तुत करते थे। गुरू अर्जुन साहिब ने श्री गुरु ग्रंथ साहिब का सपादन करके सिखों को जुगो जुग अटल शब्द गुरु की निधि प्रदान की। सिखों को पराधर्मियों के प्रभावों तथा करोपो से बचाने के लिए सिख प्रभावी नगर बसाये, केन्द्रीय धर्म मदिर "श्री हरिमंदर साहिब" का निर्माण करके अमृतसर को एक व्यापारिक नगर के रूप में विकसित करके, सिखों की आर्थिक दशा को मजबूत किया, इसी मनोरथ के लिए ही दसवध (आय का दसवां हिस्सा—धर्म कार्यों पर व्यय करने हेतु) की प्रथा आरंभ की। इस धर्म के ऊँचे निर्मल सिद्धांतों की रक्षा के लिए अनेकों कष्ट सहार कर शहीदी प्राप्त की। छट पातशाह श्री गुरू हरि गोबिंद साहिब जी ने सिखों को तलवार पकड़ाई भक्ति तथा शक्ति का मेल किया। आपने 'हरिमंदर' के समीप 'अकाल तख्त' की स्थापना करके धर्म तथा राजनीति को व्यावहारिक तौर पर आपस में जोड़ दिया अकाल तख्त तबसे लेकर आजतक सिखों के हर प्रकार के मसले—धार्मिक, सामाजिक तथा राजनोतिक—सुलझाता रहा है और सिखों को अगवाई देता आ रहा है। आप सिखी प्रचार के लिए देश के कुछ भागों में भी गये। गुरू हरि रॉय जी तथा गुरू हरिकृष्न साहिब ने भी अपने समय में गुरमत की खुशबू को फैलाया। नौवी पातशाही श्री गुरू तेग बहादुर जी ने सिखों को स्वाभिमान से जीने तथा मरने की ट्रेनिंग दी। आपने धार्मिक स्वतंत्रता की खातिर अपनी कुर्बानी दे दी। इससे पहले आप सिखी प्रचार के लिए सारे देश में घूमे थे।

इस प्रकार सतगुरू साहिबान के महान यत्नों तथा प्रयासों के फलस्वरूप सिख एक मजबूत समाज के रूप में सगठित हो चुके थे। साहिब श्री गुरू गोबिंद सिंघ जी ने 30 मार्च, 1699 को बैसाखी वाले दिन, उनकी परोक्षा ले कर उन्हें विधी-पूर्वक एक कौम का रूप दे दिया। इस प्रकार गुरू नानक साहिब का 'निर्मल पंथ' ही 'खालसा पंथ' के नाम से जाना जाने लगा। यह गुरू नानक पातशाह का उद्देश्य था।

सदा याद रखें

1. सिख ने केवल एक अकाल पुरख के नाम का ही सिमरन करना है जो सब को पैदा करने वाला, पालने वाला और मारने की ताकत रखता है।

2. गुरू ग्रंथ साहिब के बिना और किसी देहधारी को गुरू नहीं मानना और न ही किसी के आगे माथा टेकना है।

3. सिख ने सुबह जल्दी उठ कर स्नान करके, वाहिगुरू का सिमरन करना है और फिर गुरबाणी का पाठ (नितनेम) करना है।

4. गुरबाणी का पाठ करते समय जल्दी नहीं करनी चाहिए। प्यार, आदर से मन लगा कर, समझ विचार कर, शुद्ध पाठ करना चाहिए।

5. गुरसिख ने प्रतिदिन गुरूद्वारे जा कर कीर्तन, कथा सुन कर लाभ उठाना है। सिख के लिए धार्मिक स्थान केवल गुरूद्वारा ही है, और कोई नहीं।

6. सिख ने एक दूसरे को मिलते समय वाहिगुरू जी का खालसा, वाहिगुरू जी की फतहि ही कहना है।

7. गुरबाणी की पोथी, गुटके आदि को रूमाल में लपेट कर आदर से रखना है और गन्दे हाथ नहीं लगाने।

8. सिख ने हमेशा अपना नाम सिंघ या कौर शब्द के साथ पूरा लिखना है। नाम के साथ जात नहीं लिखनी चाहिए।

9. सिख धर्म में प्रभु के नाम सिमरन को ही सच्चा तीर्थ माना गया है। और तीर्थ यात्रा और तीर्थ स्थानों का सिख धर्म में कोई स्थान नहीं है।

10. सिख ने ऐतिहासिक गुरूद्वारों के दर्शनों के लिए जाना है ताकि सिख इतिहास की जानकारी हो सके और अपने बहुमुल्लय विरसे के बारे में जान सकें।

11. सिख ने कुश्तीयां तथा और खेलों में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेना है, परन्तु गंदी फिल्में और गंदे नाटक, जिनमें गंदे सीन दिखाये जाते हैं, से दूर रहना है।

12. सिख ने कभी भी, किसी प्रकार का नशा (शराब, भंग, अफीम, चरस, तंबाकू, सिगरट, स्मैक)आदि का प्रयोग नहीं करना।

13. सिख लड़कियों के लिए नाक, कान छेदना और नाक, कान में गहने पहनने सिख रहत मर्यादा के अनुसार गलत है। सिख स्त्रियों के लिए घुंघट निकालना मना है।

14. सिख स्त्रियों के लिए घुंघट निकालना मना है।

15. सिख पुरुष और स्त्रीयों के लिए सिर ढके बिना बाजारों में घूमना और नंगे सिर रहना विवर्जित है। केशों के आदर के लिए हर समय दसतार या चुंनी से केश ढकने चाहिए।

੧ੴ वाहिगुरू जी की फतहि।।

सिख मिशनरी कालेज का उद्देश्य

हम सिख हैं।

इसलिए यह आवश्यक है कि हमें सिखी असूलों(नियमों) का पता हो, गुरबाणी के अर्थ भाव, सिख इतिहास की जानकारी, सिख रहित मर्यादा के असूल सिख फिलासफी, सिख सभ्यता की हर गुरसिख को जानकारी होनी अति आवश्यक है। यदि हमें इनका ज्ञान नहीं हो हम कैसे सिख कहला सकते हैं ? पाठ हम करते जा रहे हैं, पर यदि कोई हमसे गुरबाणी के किसी वाक्य का अर्थ पूछ ले और हम जवाब न दे सकें तो यह हमारे लिए कितनी शर्मनाक बात होगी। दस गुरू साहिबों एवं प्राचीन गुरसिखों के इतिहास की जानकारी होनी आवश्यक है, यदि हम अपना बेमिसाल इतिहास नहीं जानते तो हम कैसे दूसरे को बता सकेंगे कि हम कौन-सी विरासत के मालिक हैं। सिख रहत् मर्यादा के उसूल कौन-कौन से हैं, इस विषय पर हम आमतौर पर अज्ञानी हैं। घर में पाठ रखना हो या जीवन में कोई संस्कार करना हो, गुरमत क्या है, इसे जानने के लिए हमें ग्रंथी सिंघों या ज्ञानी व्यक्ति पर निर्भर होना पड़ता है। पर क्या सिख होते हुए ऐसे असूलों की जानकारी हमें स्वयं को होनी ज़रूरी नहीं ?

आज हम देखते हैं हमारे में जो कमज़ोरियां आ रही हैं, उसका मुख्य कारण यही है कि हमने सिखी के बारे में ज्ञान प्राप्त करने की ज़िमेवारी नहीं समझी। यदि हमें गुरसिखी के असूलों का स्वयं ज्ञान हो तो हम अपने नौजवानों को जो अनजाने में दाड़ी व केशों की बेअदवी कर रहे हैं, नशे पी रहे हैं, देहधारी पाखंडी गुरूओं को मान रहे हैं, को गुरबाणी के उसूल दृढ़ करवा कर, खून से लिखा अपना बलिदानी इतिहास सुना कर सिख धर्म की ओर प्रेरित कर सकते हैं। जो नौजवान आज बागी हो रहे हैं तो इसमें उन बेचारों का क्या दोष ? दोष तो हमारा अपना है, हमारे प्रचारकों का है, हमारी अगवाई करने वालों का है जो ऐसे नौजवानों को सिख धर्म की ओर नहीं प्रेरित कर सकें।

आज ना तो सिखी हमें माता-पिता से, घर से ही मिल रही है (क्योंकि माता-पिता ही सिखी से दूर हो चुके हैं तथा मादा प्रस्ती में बुरी तरह उलझे हुए हैं) व ना ही सिखी 'खालसा' स्कूलों, कालेजों से ही मिल रही है; क्योंकि किसी स्कूल या कालेज को छोड़कर सिखी के संदेश देने का प्रबंध हम इनमें कर ही नहीं सके या किया ही

नहीं, जहां पहले खालसा, स्कूलों कालेजों में होता था। गुरद्वारों में से सिखी की सिक्षा मिलनी चाहिए थी क्योंकि गुरुद्वारे बने ही सिखी का प्रचार करने के लिए, पर आज गुरुद्वारों में फैली गुटबाजी, पार्टीबाजी गुरुद्वारे पर कब्जे की भूख, गोलक (गुरूद्वारे में चढ़ाए हुए धन) की लड़ाई, नौजवानों के मार्ग में वाधा बनी हुई हैं, जिस कारण वह गुरूद्वारों में हो रहे धर्म प्रचार को नहीं स्वीकारते। फिर जो प्रचारक हमने अपने धर्म स्थानों में लगा रखे हैं, उनमें से बहु-गिनती अनपढ़ हैं। यदि हमारे बहुत सारे प्रचारकों की, ना स्कूली शिक्षा हो, ना वह धर्म के क्षेत्र में पूरा ज्ञान रखते हों, ना हि उच्च महान् जीवन, ना ही प्रचार के लिए मिशनरी उत्साह हो तो फिर यह आशा कैसे रखी जा सकती है कि ऐसे प्रचारक नौजवान पीढ़ी पर अपने प्रचार का अच्छा प्रभाव डाल सकेंगे। सत्य तो यह है कि प्रचारकों का यह क्षेत्र केवल एकमात्र माया कमाने का एक साधन बना कर रख दिया गया है, व प्रचार का वास्तविक उद्देश्य अलोप होता जा रहा है।

जब हम दूसरे धर्मों ईसाई मत, इस्लाम मत आदि की ओर देखते हैं तो उनके प्रचारक व प्रचारक तैयार करने वाली संस्थाएं (अदारे) देख कर दंग रह जाते हैं कि कैसे उन्होंने ग्यारह सालों का लम्बा समय लगाकर लाखों कि गिनती में प्रचारक तैयार किए हैं व प्रचार के क्षेत्र में उन्हें पूरी तरह तैयार किया है। पर जब हम अपने प्रचारकों की ओर देखते हैं तो असहाय से होकर रह जाते हैं क्योंकि हमारे प्रबंधकों ने प्रचारकों की तैयारी के लिए कोई बड़े संगठित व योग्य मिशनरी कालेज नहीं खोला, जहां प्रचारकों को सिख धर्म की पूरी शिक्षा देकर तैयार करके प्रचार के क्षेत्र में भेजा जा सके। योग्य प्रचारकों की कमी कारण ही हमारा धर्म जो दुनिया का सबसे बढ़िया व आलमगीर धर्म है। जो हर देश, प्रदेश में, बिना किसी जात-पात, अमीर-गरीब, वर्ग भेद, रंग रूप आदि बिना भेदभाव प्रचार किया जा सकता है, संसार में तो क्या पंजाब में भी सही ढंग से नहीं प्रचार सका

उपरोक्त कमी को महसूस करते हुए 'सिख मिशनरी कालेज' आरम्भ किया गया है, जिस द्वारा 'दो साला सिख मिशनरी कोर्स (Correspondonce Course) करवाने का प्रबंध किया गया है। पढ़े-लिखे नौजवान, इस दो साला सिख मीशनरी कोर्स करने के बाद (Elementry Sikh Missionaries)के तौर पर कार्य करेगें। यह गुरमति प्रचारक अपनी कार्य करते हुए प्रचार का काम (Part time) में बिना किसी प्रकार की तन्खाह फल आदि के करेंगे।

हलूणा

"गुरसिखो, जो आप की इच्छा है आप वही करो, पर आपका गुरू आप से कभी प्रसन्न नहीं होगा। मैंने पढ़ी है आप की सिख हिस्टरी। मैंने पढ़ी है आप की गुरबाणी, जितना भी मुझे तरजमा मिला है, मैंने बहुत पढ़ा है इस धर्म के बारे में। इतना तो आप सिखों ने भी नहीं पढ़ा होगा। मैं सच कहता हूँ, हम ने तो एक क्राईस्ट के सूली चढ़ने की बात को ले कर अपना धर्म सारे संसार में फैला दिया। आपका इतिहास तो हज़ारों क्राईस्टों से भरा पड़ा है। कौन-सा ऐसा धर्म है जिस के गुरू उबलती हुई देग में बैठे हों और गर्म तवी पर बैठे हों ? कौन सा ऐसा धर्म है जिसके गुरू ने अपना सीस चौराहे में कटवा दिया हो ? कौन से धर्म के आशिक ने बन्द बन्द कटवाए हों ? किस धर्म का आशिक आरे के साथ चीरा गया हो ? किस धर्म को मानने वालों ने ज़ुलम के विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए सिरों पर कफन बांध कर फोजी टुकड़ी बनाई हो, जो पूरी सल्तनत और सल्तनत की हकूमत से टकरा गई हो ? किस धर्म के रहनुमा ने अपने बच्चे नीहों में चिनवाए हैं ? कसम खुदा की, केवल पांच सौ सालों का इतिहास, और वह भी खून से लिखा हुआ है और वैसे भी आपकी गुरबाणी में प्यार है, मनुष्य की सेवा करने का आदेश है। प्यार के शब्दों का गायन करते हुए आप जुलम के विरुद्ध तलवार उठा लेते हो और युद्ध करने के लिए तैयार हो जाते हो। अजीब धर्म है आपका। आपने इतने नायाब इतिहास को केवल दो करोड़ छातियों में कैद करके रखा हुआ है और दो करोड़ भी नहीं, मुझे तो डर है कि आजकल के पढ़े लिखे लोग तो अपने बच्चों को यह दासतां सुनाते ही नहीं होंगे और जो गांवों में रहने वाले लोग वे पढ़े लिखे नहीं वे वैसे ही इनमें धीरे-धीरे मुअज़ज़ियों का पानी मिलाते जाएंगे। ऐ दोस्त, विश्वास और अन्ध विश्वास में बहुत अन्तर होता है। विश्वास के लिये ज्ञान की किरण का होना ज़रूरी है। ज्ञान के बिना जो शेष बचता है उस में अन्ध-विश्वास यानि 'सुपरस्टीशन' की 'अैडलटरेशन' मिलावट होती जा रही है। क्या किया है आपने इसको रोकने के लिए ?"

"बाईबल को हम करोड़ों की तादाद में मुफ्त बांटते हैं या फिर दो या चार रुपये की कीमत रखते हैं। मैंने सुना है आपके गुरुद्वारों का प्रबन्ध करने वाली शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी की वार्षिक आमदनी करोड़ों रुपये की है। उन पैसे से आपको गुरबाणी के तरजमे लाखों की तादाद में छापने चाहिए। सिख हिस्टरी के तरजमे संसार भर की सभी भाषाओं में छाप कर सारे संसार में भेजने चाहिए। हमने भी तो बाईबल को छापा है हिन्दुस्तान की सभी भाषाओं में, पंजाबी में भी। मैंने तो सुना है कि आपने सिख हिस्टरी भी पंजाबी में छपवा कर हर गांव के हर घर में नहीं पहुंचाई। कितने एहसान फरामोश हो आप, अपने गुरूओं के प्रति और अपने शहीदों के प्रति। एहसान फरामोशों के लिए नर्क के बिना और कहां स्थान हो सकता है। आप सभी नर्क में जाओगे। मुझे तो यही चिन्ता है, कमबखतों ! बहुत भीड़ कर दोगे वहां पर।"

यह वो शब्द हैं जो लंदन के एक पादरी ने एक प्रसिद्ध सियासतदान और विद्वान सज्जन को लंदन में कहे और उसके कहने में थोड़ा सा भी झूठ नहीं है। लिटरेचर से कौम में जागृती पैदा करने के लिए हमारी लीडरशिप शिरोमणी कमेटी और अकाली दल कोई ध्यान नहीं दे रहा। सिखों का अपना न कोई समाचार पत्र है, न कोई प्रैस और न ही प्लेटफोर्म। सिखों को लोगों की लिखतों पर निर्भर करना पड़ता है जो तथ्यों को ठीक ढंग से पेश नहीं करते।

पूरी सिख लीडरशिप सियासत की ऐसी गहरी खाई में गिर गई है कि धर्म के प्रचार के लिये उसके पास समय नहीं है।

शिरोमणी कमेटी ने तो अभी तक गिनती की किताबें ही छापीं हैं, फ्री लिटरेचर छपाने और लाखों की गिनती में बांटने के विचार पर तो कमेटी ने कभी ध्यान ही नहीं दिया। शायद कमेटी यह समझती है कि यह एक गैर-ज़रूरी काम है जो किसी और संस्था को करना चाहिए।

'सिख मिशनरी कालिज' लुधियाना ने ५60 के करीब छोटे-छोटे टरेक्ट सिख धर्म के बारे में छपवाए हैं जो कम कीमत और धार्मिक पुस्तकों के स्टाल लगा कर संगतों के पास पहुंचाए जाते हैं। कालिज के सभी वर्कर अपने काम धन्धे करने वाले निष्काम प्रचारक हैं और अपना दसवंद देकर इस संस्था को चला रहे हैं। कालिज के पास कोई ऐसा आमदन का साधन, गुरुद्वारे की चढ़त या कोई पूंजी नहीं है, जिससे छपा हुआ लिटरेचर फ्री बांटा जा सके। वैसे हमारा यह पक्का मत है कि जितनी देर सिख संगत पास फ्री लिटरेचर नहीं पहुंचता उतनी देर कौम में जाग्रिती नहीं आ सकती और कौम के अन्दर गुरबाणी के अर्थ सीखने, सिख इतिहास की गाथाओं को जानने की और सिख रहित मर्यादा के नियमों को समझने की भूख पैदा नहीं हो सकती। आज का भूला हुआ सिख घर में फज़ूल चीज़ों के लिए तो धन खर्च कर सकता है, शराब की बोतल के लिए तो बजट से पैसे निकाल सकता है परन्तु धार्मिक लिटरेचर, गुरबाणी स्टीक, सिख इतिहास के बारे में पुस्तकों पर कुछ भी रुपये खर्च करने के लिये तैयार नहीं। उस को तैयार करने के लिये और लिटरेचर पढ़ने की भूख पैदा करने के लिये 'सिख मिशनरी कालिज' की तरफ से फ्री लिटरेचर प्रोग्राम बनाया गया है।

सिख संगत और दानी सज्जनों की सेवा में निवेदन है कि वे बढ़-चढ़ कर धन इस प्रोजैक्ट के लिए भेजें। कम से कम दस रुपये तो हर पंथ-दर्दी को भेजने चाहिए। सिख मिशनरी कालिज के प्रबन्धकों ने यह पहली बार अपील की है। हमें पूर्ण आशा है कि हर पंथ-दर्दी अपने दसवंद में से 'फ्री लिटरेचर फंड' के लिए ज़रूर धन भेजेंगे और दूसरों को प्रेरित करेगा। आप की यह भेजी राशि केवल फ्री लिटरेचर बांटने के लिए खर्च की जायेगी। इस का अलग खाता खोला गया है। संगत जब भी चाहे उनको फ्री लिटरेचर बांटने के लिए भेजा जाएगा। हर पंथ-दर्दी जो इस कमी को महसूस करता है और लंदन के पादरी के शब्दों को झूठा सिद्ध करना चाहता है वह हर मास अपने दसवंद में से रैगूलर सहायता **'फ्री लिटरेचर फंड'** के लिये भेजे। 'सिख मिशनरी कालिज' के सभी सहयोगियों, सर्कलों और हितेषियों को निवेदन है कि वह भी अपने अपने सर्कलों से राशि इकट्ठी करके हर मास **'फ्री लिटरेचर फंड'** के लिये भेजें।

[illegible] । ❀❀❀❀